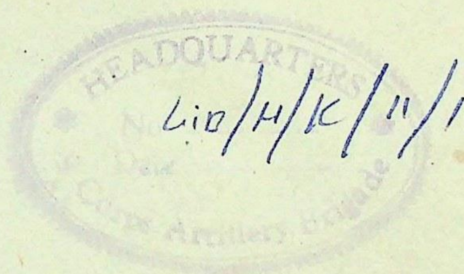
अमृतलाल नागर




HEADQUARTERS
No.
Date
Corps Artillery Brigade
Lib/H/K/11/1

कृपया दायें चलिए


राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

कृपया दायें चलिए

अमृतलाल नागर

मूल्य : पांच रुपये ❖ प्रथम संस्करण 1973 © अमृतलाल नागर
KRIPAYA DAYEN CHALIYE (Satire), by Amrit Lal Nagar
Rs. 5.00

क्रम



कृपया दायें चलिए : एक घोषणा-पत्र

इस बार भी अगस्त के महीने में जब हमारी किताबों की रायल्टी की राशि चढ़ती महंगाई के मुकाबले में एकदम औसत ही आई, तो हम अपने पेशे की आय रूपी अकिंचनता से एकदम चिढ़ उठे, हमने यह तय किया कि अब लिखना छोड़कर कोई और धंधा करेंगे। मगर क्या करें, यह समझ में न आता था। कई बिगड़े रईसों के बारे में सुना था कि जिन आदतों से वे बिगड़े थे, उन्हींमें नये लक्ष्मी-वाहनों के पट्ठों को फंसा कर, उनके पैसों के बल पर वे शान से अपनी ज़िंदगी बसर कर सके थे। पर हमारी लत तो बुरी ही नहीं निकम्मी भी थी, यानी साहित्यिक बन गए थे। और यह साहित्यिकता आमतौर से रईस छौनों के मनबहलाव की वस्तु ही नहीं होती, इसलिए हमारे वास्ते यह साहित्यिक इल्लत उस रूप में भी बेकार थी। दूसरा विचार आया कि पान और भंग-ठंडाई की दुकान खोल लें। जगत्-प्रसिद्ध साहित्यिक नहीं बन सके, तो न सही, 'जगत्-प्रसिद्ध तांबूल विक्रेता' का साइनबोर्ड टांगने का शानदार मौक़ा मिल जाना भी अपने-आपमें कम महत्त्वपूर्ण उपलब्धि न होगी। ठंडाई के तो हमें ऐसे-ऐसे नुस्खे मालूम हैं कि शहर के सारे ठंडाईवाले हमारे आगे ठंडे हो जाएंगे। सीधे गवर्नर से ही दुकान का उद्घाटन कराया जाएगा; उन्होंने अपने शासनकाल में अब तक हर तरह के उद्घाटन कृपा-पूर्वक कर डाले हैं, बस पान-ठंडाई की दुकान ही अब तक नहीं खोली, खुशी से चले आएंगे। धूम मच जाएगी। बस यही होगा कि चार लोग हमारा मज़ाक उड़ाएंगे कि नागरजी ने पान-ठंडाई की दुकान खोली है। अरे उड़ाया करें, 'आहारे-व्यवहारे, लज्जा नकारे।' जब इतने बड़े महाकवि जयशंकर प्रसाद अपने पैतृ-पेशेवश सुंघनीसाहु कहलाने से न सकुचाए, तो पान-ठंडाई-सम्राट् कहलाने से भला हम ही क्यों शर्माएं !

भांग के गहरे नशे में इस स्कीम पर हम जितना ही अधिक गौर करते गए, उतनी ही हमारी आस्था भी बढ़ती गई। हमें यही लगा कि जैसी आस्था हमें इस व्यापार-योजना से मिल रही है, वैसी किसी साहित्यिक योजना से अब तक मिली ही न थी। अस्तित्ववाद, शाश्वतवाद, रस-सिद्धांत, पूंजीवाद, लोकतंत्रवाद, भारतीय संस्कृतिवाद, आदि हर दृष्टि से हमारी यह दुकान-योजना परम ठोस थी। इसलिए मन पोढ़ा करके हमने अपने दोनों लड़कों को बुलाकर अपने मन की बात कही। छोटा बोला, "बाबूजी, मैं तो सपने में भी यह कल्पना नहीं कर सकता कि आप दुकानदार बन सकते हैं!"

हमने आस्थायुक्त स्वर में उत्तर दिया, "बेटे, यथार्थ सदा कल्पना से अधिक विचित्र रहा है। जहां इच्छा है, वहां गति भी है। जवाहरलाल नेहरू का एक वाक्य है कि सफलता प्रायः उन्हींको मिलती है, जो साहस के साथ कुछ कर गुजरते हैं; कायरों के पास वह क्वचित ही जाती है।"

बड़े बेटे ने कहा, "आप जैसे जाने-माने लेखक के लिए यह शोभन नहीं लगता, बाबूजी। यदि अपनी नहीं, तो कम से कम हम लोगों की बदनामी का ही खयाल कीजिए।"

हमने तुर्की-बतुर्की जवाब दिया, "तुम लोगों का यह आबरूदारी का हौवा निहायत पेटी बुर्जुआ किस्म का है। हम घर आती हुई छमाछम लक्ष्मी को देख रहे हैं। तुम लोग यह क्यों नहीं देखते कि दुकान की सफलता के लिए हमारी साहित्यिक गुडविल, पान और भांग-रसिया होने के संबंध में हमारी अनोखी किंवदंतियों-भरी ख्याति कितनी लाभकारी सिद्ध होगी। चार-पांच हज़ार रुपये महीने से कम आमदनी न होगी। तुम लोग चाहे कुछ भी कहो, हम यह दुकान ज़रूर खोलेंगे। हज़ार-दो हज़ार की लागत में लाखों का नफा। हम यह अवश्य करेंगे।"

लड़के बेचारे हमारे आगे भला क्या बोलते। उठकर चले गए और जाकर अपनी मां के आगे शंख फूंका। तोप के गोले की तरह लाल-लाल, दनदनाती हुई वह हमारे कमरे में आईं और बोलीं, "ये दुकान खोलने की बात आखिर तुम्हें क्यों सूझी?"

"पैसा कमाने के लिए।"

"पैसा तो खाने-भर को भगवान दे ही रहा है।"

"हमें ऐश करने के लिए पैसा चाहिए।"

"इस उमर में ! अब भला क्या ऐश करोगे ! जो करना था, कर चुके।"

"ऐश का अर्थ सिर्फ औरत और शराब ही नहीं होता, देवी जी। हम कार, बंगला, रेफ्रिजिरेटर, कूलर और डनलोपिलो के गद्दे चाहते हैं। प्राइवेट सेक्रेटरी हो, स्टेनोग्राफर हो, हांजी-हांजी करने वाले दस नौकर हाथ बांधे हरदम खड़े रहें, तब साहित्यिक की वकत होती है आजकल। साले पेटभरू, चप्पल चटकाऊ साहित्यिक का भला मूल्य ही क्या रह गया है, भले ही वह तीस नहीं, एक सौ तीस मारखां ही क्यों न हो ! हम पूछते हैं, क्या तुम्हें चाह नहीं होती इस वैभव की ?"

पत्नी शांत हो गईं, गंभीर स्वर में बोलीं, "जब मुझे चाह थी, तब तो तुम यह कहते थे कि साहित्य का वैभव साहित्य होता है···"

"वो हमारी भूल थी। सोशलिस्ट विचारों ने हमारा दिमाग खराब कर दिया था।"

"पर मैं तो समझती हूं कि तुम्हारी वह दिमाग-खराबी ही बहुत अच्छी थी।"

"तुम कुछ भी समझती रहो, पर हम तो अब पैसेवाले बनकर ही रहेंगे।"

"बनो, जो चाहो सो बनो, पर कान खोलकर सुन लो, मैं इस काम के लिए एक कानी कौड़ी भी न दूंगी इस रायल्टी की रकम में से।" पत्नी अब तेज़ हो चली थीं।

हमने भी अकड़कर कहा, "न दो, हम एक नया उपन्यास लिखकर एडवांस रायल्टी ले लेंगे।"

"जो चाहो सो करो। जब अपनी बनी तकदीर बिगाड़ने पर तुल ही गए हो, तो कोई क्या कर सकता है ! हिः रुपये की दो अठन्नियां भुनाना तो आता नहीं, बिज़नेस करेंगे ये !" पत्नी तैश में आकर बड़-बड़ाती हुई बाहर चली गईं और बरामदे में खड़ी होकर गरजने लगीं, "ये बिज़नेस करेंगे ! अरे, चार बरस पहले नरेंद्र जी का लड़का परितोष

आया था। कितना छोटा था तब वह, फिर भी खेल ही खेल में इन्होंने जब उससे कहा कि हम-तुम साझे में पान की दुकान खोल लें, तो वह बोला कि नहीं चाचाजी, आपके साथ साझा करने में घाटा हो जाएगा। सारे पान और भांग तो ये और इनके यार-दोस्त ही गटक जाएंगे। न ये अपनी आदतें छोड़ सकते हैं और न मुहब्बत। बिज़नेस करेंगे मेरा कपाल!"

कविवर नरेंद्र जी के बेटे वाली बात ध्यान में आ जाने से गुस्से का चढ़ाव न चाहते हुए भी थमने लगा। यह भी झूठ नहीं कि ठंडाई और पान के शौक में ऐसे बहुत-से परिचित मित्र हमारी दुकान पर रोज़ आ जाएंगे, जिनसे पैसा वसूल करना हमारे लिए टेढ़ी खीर हो जाएगा। सोचा कि घरैतिन ठीक ही कहती है, इस धंधे में घाटा होने की संभावना ही अधिक है। फिर धीरे-धीरे मन यहां तक मान गया कि हम न तो धंधा करने के योग्य हैं और न कोई नौकरी ही, चाहे वह बढ़िया वाली ही क्यों न हो। अपनी अयोग्यता और अभागेपन पर झुंझलाहट होने लगी।

दूसरे दिन इतवार था। इतवार औरों के लिए छुट्टी और हमारे लिए सिर दर्द का दिन होता है। अभी घड़ी में पूरे-पूरे साढ़े सात भी न बजे थे कि बेटी ने आकर मोहल्ले के कई व्यक्तियों के पधारने की सूचना दी। हमने सोचा कि शायद मध्यावधि चुनाव के सिलसिले में किसी उम्मीदवार के नाम का प्रस्ताव लेकर आए होंगे। इस विचार ने मन को स्फूर्ति दी। सोचा, इस बार हम क्यों न खड़े हो जाएं। पान की दुकान न सही, नेतागिरी सही, इन दोनों ही पेशों की आमदनी सदा इनकमटैक्स विभाग वालों की पकड़ से बाहर ही रहती है। इस विचार से एक बार फिर आस्था रूपी जीवनमूल्य की उपलब्धि हुई।

तब तक हाथ में अपना हुक्का उठाए हुए बड़े बाबू, लल्लो बाबू, पत्तो बाबू, सत्तो बाबू, सुनत्तो बाबू वगैरह-वगैरह ढब-बेढब नामों के चार-पांच शिष्ट जन पधारे। बड़े बाबू आते ही बोले, "पंडित जी, गली वाली नाली देखी आज आपने? गंगा-गोमतियां फलडियाया करती थीं, अब साली

नाली में फ्लड आता है। ये ज़माना है, ये गवरमेंट है साली !"

"अजी परी गोबरमिंट है साहब, राज भी गोबरनर का है। हम तो कहते हैं कि इस बार मध्यावधि चुनाव में इसे पूरी तरह से बदल डालिए।" अपने भावी वोटर भगवान को जोश दिलाने की कामना से हमने ज़रा नेता मार्का नाटकीय अंदाज़ साधा।

"कहते तो आप ठीक ही हैं पंडित जी, मगर मध्यावधि चुनाव के अभी चार-पांच महीने पड़े हैं, आप तत्काल की बात सोचिए। कार्पोरेशन में किसी बड़े अफसर को फोन-वोन करके ये गंदगी ठीक करवाइए जल्दी से, अंदर से मेनहोल उबल रहा है। बड़ी बदबू फैल रही है बाहर।"

खैर, किस्सा कोताह यह कि मेयर, डिप्टी मेयर, हेल्थ अफसर आदि को फोन करके हमने मेहतर दल को बुलाने में सफलता प्राप्त कर ही ली और उस सफलता के तुफैल में हमने भावी चुनाव में खड़े होने का इशारा भी फेंक दिया। चार दिन में धूम मच गई कि हम खड़े हो रहे हैं।

पत्नी फिर सामने आईं, बोलीं, "इलेक्शन लड़ोगे ?"

"हां, अब मिनिस्टर बनने का इरादा है।"

"पैसा कौन देगा ?"

हमने कहा, "बुद्धिजीवी जब अपना ईमान बेचता है, तो पसों की कमी नहीं रहती।"

तभी लड़के आए, उन्होंने पूछा, "आप किस पार्टी से इलेक्शन लड़ेंगे ?"

हम बोले, "इस समय तो हमारी गुडविल ऐसी ज़बरदस्त है कि सभी पार्टियां हमें टिकट देना चाहती हैं।"

बड़ा बोला, "मगर इस समय तो इन सब पार्टियों की साख गिरी हुई है। इनमें से एक भी पूरी तरह सफलता नहीं पाएगी।"

हमने कहा, "सही कहते हो। हम बुद्धिमत्ता से काम लेकर अपनी पार्टी बनाएंगे।"

"आपका मेनिफेस्टो क्या होगा ?"

हम गौर करने लगे। अपना स्वार्थ साधने के लिए ऐसा मेनिफेस्टो बनाना चाहिए, जो औरों से अलग लगे और साथ ही पैसा मिलने के

साधन भी जुट जाएं। हमने कहा, "देखो, इनमें से कोई भी पार्टी इस बार बहुमत नहीं पाएगी। क्योंकि जनता सबमें अपना विश्वास खो बैठी है। और यहां के सेठ हमें पैसा भी नहीं देंगे, क्योंकि इनमें से कुछ कांग्रेस के साथ हैं और कुछ जनसंघ के। इसलिए हमारा पहला नारा यह होगा कि भारत के जिन-जिन प्रदेशों में इस समय मध्यावधि चुनाव हो रहा है, उनमें स्थायी शांति और सुशासन लाने के लिए दस बरसों तक पाकिस्तान, अमरीका और ब्रिटेन का सम्मिलित राज होना चाहिए। इससे हिंदू-मुस्लिम एकता और स्थायी शांति बढ़ेगी, तथा इन तीनों की तरफ से मुख्यमंत्रित्व का भार हम संभालेंगे। इस त्रिदेशीय फार्मूले से हिंदुस्तान और पाकिस्तान के सारे मसले हल हो जाएंगे। इस तरह देश की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर निःशस्त्रीकरण की नीति को अमल में लाने के लिए एक रास्ता खुल जाएगा।"

"ठीक। और क्या होगा आपके मेनिफेस्टो में ?"

विचारों की रोशनी से हमारी आंखें सहसा चौंधिया उठीं। हमने फौरन अपना धूप का चश्मा चढ़ा लिया और गंभीर पैगंबरी स्वर में कहा, "हम अपरिवर्तनवाद का सिद्धांत चलाएंगे—हिंदू हिंदू रहे और मुसलमान मुसलमान। इन्हें एक भारतीय समाज हरगिज़ न बनने देना चाहिए, हम एक और अखंड भारत के खिलाफ हैं।"

"और भाषा ?"

"भाषा का भूमि और संस्कृति से कोई संबंध नहीं। पाकिस्तान, अमरीका और ब्रिटेन में से जो हमारे इलेक्शन का खर्च उठाने को राज़ी हो जाएगा, उसकी भाषा का समर्थन करेंगे। वैसे अपनी जनता की सुविधा के लिए हम अंग्रेज़ी को भारत की राष्ट्रभाषा···"

"क्या कहा ? अंग्रेज़ी को राष्ट्रभाषा बनाओगे ! अपने स्वार्थ के लिए हर झूठ को सच बनाओगे ?"

पत्नी के तेहे पर हमने अपनी बौद्धिक मार्का हंसी का गुल खिलाया और कहा, "अरी पगली, नेता और वकीलों की सफलता ही इस बात पर निर्भर करती है।"

"झाड़ू पड़े तुम्हारी नेतागिरी पर। मैं आज से ही तुम्हारा खुला

विरोध करूंगी।"

"अरे, पूरी बात तो सुन लो! देश में इस वक्त अन्न की कमी है···" हम बोले, तो पत्नी ने बात बीच में काट दी, "तुम्हें कौन खाने-पीने की तकलीफ है···जो···"

हमसे आगे सुना नहीं गया। हमने अपना तेहा दिखाया, "ज़्यादा बक-बक मत करो·· ज़्यादा बात करने से भूख भी ज़्यादा लगती है··· जब तक भारत में औरतों के मुंह पर पट्टी नहीं बांध दी जाएगी, तब तक अन्न-समस्या हल होने वाली नहीं है। अन्न मंगवाने के लिए हमने तय किया है कि एक टन गेहूं के बदले में हम एक नेता उस देश को सप्लाई करेंगे, जो हमें अन्न देगा। वह सौ टन गेहूं देगा, हम सौ नेता उसे देंगे! वह हज़ार देगा, तो हम हज़ार देंगे।"

पत्नी मुंह बाये सुन रही थीं। मौका देखकर हमने और खुलासा किया, "हमारी पार्टी भ्रष्टाचार को शिष्टाचार के रूप में मंजूर करती है, बगैर तकल्लुफ के कहीं राज चलते हैं? घूसखोरी का तकल्लुफ हमारे राज में बराबर बरता जाएगा! रोज़ी-रोटी मांगने वालों की खाल खिचवाकर बाटा वालों को सप्लाई की जाएगी, ताकि रूस से आने वाली जूतों की मांग पूरी की जा सके।

"गीता का यह श्लोक हमारा सिद्धांत वाक्य होगा और नारा भी···

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'

"दकियानूसियों ने इस श्लोक की रेढ़ मारके रख दी है। हम इसका सीधा, सरल और सही अर्थ अपनी धर्मप्राण जनता को समझाएंगे।"

"क्या?" पत्नी नें बिफर के पूछा।

"अरे भाई, सीधी-सी बात है। हर आदमी का अपना-अपना धर्म है। चोर का धर्म चोरी करना, डकैत का डाका डालना, बेईमान का बेईमानी करना, इसी तरह गरीब का धर्म है गरीबी और अमीर का अमीरी। गरीब को अमीर का धर्म अपनाने की छूट नहीं दी जाएगी और न अमीर को गरीब का धर्म अपनाने की। हम इस धर्म-परिवर्तन के सख्त खिलाफ हैं। इस धर्मवादिता से जनसंघ के समर्थक भी हमारी पार्टी में आ सकते हैं···"

पत्नी हमारे विरुद्ध प्रचार करने लगी हैं। हमारा चुनाव का सपना डांवाडोल हो रहा है और जनता के क्रोध से बचने के लिए हम इस समय बंबई भाग आए हैं। क्रोध में बराबर यही बात मन से फूटती है कि सत्यानाश हो इस जनता का, जो हमें नेता नहीं मानती।

मैं ही हूं

मैं—वाह रे मैं, वाह। मैं तो बस मैं ही हूं—मेरे मुकाबले में भला तू क्या है! इस मैं और तू को लेकर हमारे संतों और बुधजनों ने शब्दों की खासी खाल-खिचाई भी की है। कबीर साहब का एक दोहा है कि "जब मैं था तब तू नहीं, जब तू है मैं नांय। प्रेम गली अति सांकरी तामैं दो न समायं।"

ऐसे ही किसी कवि का एक और दोहा भी मुझे याद आ रहा है। वो कहते हैं कि—

मैना जो 'मैं-ना' कहे दूध-भात नित खाय।
बकरी जो 'मैं-मैं' कहे उल्टी खाल खिचाय।।

इस तरह के बहुत-से दोहे और उपदेश वाक्य हरदम मैं-मैं करने वालों के खिलाफ आपको खोजे से मिल जाएंगे, मगर फिर भी मैं तो मैं ही है। हम चुनी दीगरे नेस्त। हम चौड़े बाज़ार सकड़ा। मैं की शान में भी कुछ कम कसीदे नहीं कहे गए।

अच्छा, अगर एक मिनट के लिए अपने आध्यात्मिक दृष्टिबिंदु को बालायेताक रखकर हम मैं वालों की दुनियावी शान-शौकत को देखें तो यह मानना ही पड़ेगा कि मैं मैं ही है। आपको एक आंखों देखा हाल सुनाता हूं। कई बरस पहले पच्छुम के एक छोटे-से नगर में मुझे एक फिल्म लेखन और निदेशन के निमित्त कुछ महीनों तक रहना पड़ा था। वहां एक बंगले के आधे हिस्से को किराये पर लेकर रहता था। आधे में मकान-मालिक स्वयं सपरिवार रहते थे। बेचारे बड़े ही शरीफ थे। दो पीढ़ियों पहले उनके बाप-दादे खासी शान-शौकत वाले थे मगर हमारे मालिक-मकान के बचपन में वह पुरानी शान-शौकत धूल में मिल चुकी थी। बेचारे एक मिल में मज़दूरी करके सड़क के लैम्प-पोस्ट के नीचे पढ़े और

बाद में अंग्रेज़ सरकार की नौकरी पाकर धीरे-धीरे फिर अपने पैरों पर खड़े हुए। एक बंगला बनवा लिया और बुढ़ापे में रिटायर होकर बाइज़्ज़त रहने लगे। उनके दो लड़के थे। बड़ा साधारण हैसियत का ईमानदार था मगर अपने-आपमें खुशहाल था। छोटा लड़का सरकार में डिप्टी कलक्टर साहब का पेशकार या पी०ए० या ऐसा ही कुछ हो गया था। अजी साहब, बड़ी शान हो गई थी उसकी, ज़मीन पर उसका पैर रखना मुहाल था, मिज़ाज आसमान में रहते थे। खैर, मकान-मालिक के बड़े बेटे की लड़की का विवाह होने वाला था, अपनी पोती का शुभ कारज करने का उनके मन में काफी हौसला भी था, अपने बहुत-से नाते-रिश्तेदारों को आमंत्रित किया। छोटे साहबज़ादे भी स्वाभाविक रूप से साग्रह बुलाए गए थे। हमारे बूढ़े मकान-मालिक बेचारे जब-तब शाम को मेरे पास आकर दो घड़ी बैठ जाते और मनुष्य-स्वभाव के अनुसार ही अपना जी खोल जाया करते थे। एक दिन आए, कहने लगे, "नागर साहब, आपको दो-चार दिन के लिए कष्ट देना चाहता हूं। मेरा छोटा लड़का सपरिवार आ रहा है। वो ज़रा इंग्लिश स्टाइल में स्वतंत्र रहने का आदी हो गया है, आप वाले हिस्से में उसे टिकाने की आज्ञा चाहता हूं।" मैंने कहा, "हां हां, खुशी से टिकाइए। मुझे कोई कष्ट न होगा।" खैर, एक दिन शाम को जब स्टूडियो से घर आया तो देखा कि एक साहब अपने नाइट गाउन और पजामे में बड़ी शान से बैठे हुए एक स्त्री पर अंग्रेज़ी में गरमा रहे थे, "उन लोगों ने मुझे समझ क्या रक्खा है। अगर मेरी उचित व्यवस्था नहीं कर सकते थे तो मुझे बुलाने ही की क्या ज़रूरत थी। आखिर बप्पा साहब को यह सोचना चाहिए था कि वो एक वी० आई० पी० को अपने यहां बुला रहे हैं। मैंने अपने खाने-पीने-नाश्ते आदि का समय और मीनू इसलिए पहले से भेज दिया था कि सब प्रबन्ध ठीको ठीक रहे।..."

अपने सोनेवाले कमरे में जाने के लिए मैं ड्राइंग रूम में घुसा। उन दोनों ने मुझे देखा, साहब ने कुछ त्यौरियां चढ़ाकर देखा; मगर मैं उन्हें उचटती दृष्टि से देखता हुआ कमरे का ताला खोलकर अन्दर चला गया। साहब की आवाज़ कानों में आती रही। वे कह रहे थे, "ये चाय आई थी या गुड़ का गरम पानी था? और मैंने लिख दिया था कि शाम

के नाश्ते में मैं ग्रामलेट और पकौड़े ही खाता हूं, घर पर इंतज़ाम न हो सके तो बाहर के किसी अच्छे होटल-रेस्टोरां से प्रबंध कर लिया जाए।

"अच्छा, अच्छा, अब शान्त हो जाओ। चार दिन के लिए किसीके घर आए हो—"

नारी-स्वर कटा और साहब-स्वर भड़का, वे गरज कर बोले, "चार दिनों से क्या मतलब है जी। मैं तुमको यहां क्यों लाया? तुम तो चार दिनों के लिए मेरे जीवन में नहीं आईं। तुम्हें तो मालूम है कि मैं क्या चाहता हूं और क्या नहीं चाहता।"

"अरे, तो पराये घर में मैं कर ही क्या सकती हूं!"

"पराया नहीं, ये मेरा घर है। मैं आधे हिस्से का हकदार हूं···" वगैरह-वगैरह। लगभग दस-बारह मिनटों तक साहबोवाच चलता रहा। इतने ही में मेरा नौकर ट्रे में चाय लेकर मेरे कमरे में आने के लिए ड्राइंग रूम में दाखिल हुआ। साहब की आवाज़ आई, "एऽ! चाय इधर लाओ।"

मेरे नौकर ने कहा: "जी, ये साहब के लिए है।"

"साहब? मेरे सिवा कौन साहब है यहां?"

"अपने साहब के वास्ते लाया हूं।" कहता हुआ वो कमरे में दाखिल हुआ। पीछे साहब का बड़बड़ाना सुनाई पड़ता रहा। हम समझ गए कि हमारे मकान-मालिक के ये पी० ए० पुत्तर 'हम चुनी दीगरे नेस्त' वाली गोत के हैं। चार दिनों में उन्होंने चार सौ बीस नाटक दिखला दिए। घर में चाहे कोई काम हो या न हो, घरातियों, बारातियों, समधी-दामाद की खातिर में उन्नीस-बीस की कसर बाकी रहे तो भले ही रह जाए मगर पी० ए० साहब की सेवा में कोई कसर न रहे। दिन-भर अपनी पत्नी, नौकर, बड़े भाई की पत्नी, बड़े भाई, उनके बच्चों और यहां तक कि अपने बाप तक पर हरदम गरमाते ही रहते थे। बस, एक मेरा नौकर ही ऐसा था जो उनकी हुक्म-उदूली करके उनकी साहबी को भड़का देता था। एक दिन मेरे स्टूडियो जाने के बाद उन्होंने मेरे नौकर से मेरी आराम कुर्सी बाहर निकाल देने को कहा। उसने कह दिया, कुर्सी पर मेरे साहब शाम को आराम करते हैं। बस, पी० ए० साहब बारूद हो गए। उसी

दिन घर में बारात आई थी। सबको बारातियों के स्वागत-सत्कार की चिन्ता थी और पी० ए० साहब को आराम कुर्सी न मिलना ही परेशान कर रहा था। अपने बाप तक पर गर्मा उठे, अपनी पत्नी को बिस्तर बांधने और तुरन्त लौट चलने का आदेश दे दिया। उनका भतीजा किराये की आराम कुर्सी लाने के लिए फर्नीचर की दुकानों पर भटका, पर न मिल सकी। हार कर वह लड़का मेरे स्टूडियो पहुंचा और रोने लगा : "काका ने आराम कुर्सी के लिए आफत जोत रक्खी है।" मैंने नौकर के लिए एक हुक्मनामा लिखकर दिया तब कहीं जाकर मामला थमा।

मेरे कहने का मतलब है कि ऐसे भी बहुत-से 'मैं' वादी घमंडी होते हैं जो अपने आगे किसीको कुछ समझते ही नहीं, अपने घर वालों तक को अपना तुच्छ गुलाम समझते हैं।

अब एक दूसरी कहावत और उसका एक दृष्टान्त भी सुनिए। कहावत है : "मैं और मेरा मन्सुआ, तीजे का मुंह झुलसुआ।" यही कहावत थोड़े रूपान्तर के साथ भी मैंने सुनी है जो इस प्रकार है : "मैं और मेरा भतार बाकी सब दाढ़ीजार।" इस कहावत की मिसालें तो खूब ही मिलती हैं। जहां चार औरतें मिलीं नहीं कि 'हम और हमारे साहब' की भागवत बंचने लगती है। "हम ऐसे और हमारे साहब ऐसे! हमारे साहब को ये पसन्द है और हमारे साहब को ये नापसन्द हैं।" चार औरतें बैठी हों तो चारों अपनी ही अपनी सुनाएंगी। कोई किसीसे कम नहीं, "मैं भी रानी तू भी रानी, कौन भरे कूयें से पानी" वाली कहावत अक्षरशः चरितार्थ होने लगती है। सबको अपनी ही शान-गुमान की चिन्ता रहती है—हमारे बच्चे बच्चे, औरों के लुच्चे। अपना पूत पराया धतिंगड़। मज़ा तब आता है जब फलानी ढिमाकी के बच्चों को बुरा बतलाती है और ढिमाकी फलानी के बच्चों को। इस दूसरी कोटि के 'मैं' वादियों में पहली कोटि के गुमानियों से बस इतना ही अंतर होता है कि वह केवल अपने ही को उच्च मानता है और यह लोग अपनी उच्चता में अपने साथ-साथ अपने पतियों या पत्नियों और बाल-बच्चों को भी शामिल कर लेते हैं।

घमंडियों की एक तीसरी कोटि और भी होती है—ये लोग अपनी या अपनों की बुराइयों को भी बड़ी बड़ाई के रूप में पेश करते हैं। हिन्दी में

एक कहावत है जो शर्तिया किसी सपूत की मां से अपने लाड़ले के सत्संगियों की प्रशंसा सुनकर किसी कपूत की मां के बखानों पर बनी होगी। कहावत है, 'मेरे लाल के सौ सौ यार चोर जुआरी और कलार।" अब बोलिए, दाद दीजिए इस 'मैं' की शान की जो अपने बेटे के बुरेपन को भी शान से बखानती है।

इन मैं 'वादी' घमंडियों की एक कोटि वह भी होती है जो अपनी दीन स्थिति को नज़र अंदाज करके अपने पुरखों का वैभव बखानकर अपनी शान जतलाते हैं। ऐसों पर भी एक कहावत हिन्दी में बहुत उम्दा है। कहते हैं, "मेरे बाप ने घी खाया था सूंघो मेरा हाथ।" अब बोलिए, इस शान पर भला आप क्या कहिएगा। ऐसे मैं-मैं करने वाले लोग अपने मुंह मियां मिट्ठू भले ही बन लें पर दूसरे उनकी इज़्ज़त दिल से कभी नहीं कर पाते। यह कहावत बिल्कुल सच है कि खुदी और खुदाई में बैर है। जहां इतना संकीर्ण आत्मप्रेम होता है वहां परमात्म भाव कभी उपज ही नहीं सकता। घमण्डी का सिर कभी न कभी नीचा होकर ही रहता है। इसलिए यह मैं-मैं पन हमें तो भई नहीं सुहाता, हम तो उस साधुवाणी के कायल हैं जो यह कहती है :

हम वासी वहि देश के जाति वरण कुल नाहिं,
शब्द मिलावा होत है, अंग मिलावा नाहिं।

इस भाव में तो मुक्त मन से सानन्द कह सकता हूं कि मैं ही हूं। मैं सर्वव्यापी हूं। इसलिए सब तज, मैं भज। गीता में भी यही लिखा है।

कवि का साथ

आपने भी बड़े-बूढ़ों को अक्सर यह कहते शायद सुना होगा कि हमारे पुरखे कुछ यूंही मूरख नहीं थे जो बिना सोचे-विचारे कोई बात कह गए हों या किसी तरह का चलन चला गए हों। हम तो खैर अभी बड़े-बूढ़े नहीं हुए, मगर अनुभवों की आंचों से तपते-तपते किसी हद तक इस सत्य का समर्थन अवश्य करने लगे हैं। हमारे पुरखे सदा अनुभव का मार्ग अपनाते थे। संगी-साथियों का भला-बुरा, तीखा-कड़वा अनुभव उठा लेने के बाद ही उन्होंने यह सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक तत्व पाया कि—'ना कोई तेरा संग-संगाथी, हंस अकेला जाई बाबा।'

बड़े गहरे तजुर्बे की बात है। और मैं तो सेर पर पंसेरी की चोट लगाकर यहां तक कहना चाहूंगा कि 'बैर और फूट' का महामंत्र भी इसी महा अनुभव की देन है। न रहे बांस और न बजे बांसुरी। लोगों में यदि आपस में बैर-फूट फैल जाए तो फिर 'साथी-संगी' शब्द ही डिक्शनरी से निकल जाएंगे—जब साथी न रहेंगे तो साथ निभाने की ज़रूरत भी न रहेगी, चलिए जैजैराम-सीताराम, कोई टंटा ही न रहेगा। इससे व्यक्ति की स्वतंत्रता के अलभ्य सभ्य स्वर्णिम युग की कल्पना शायद कभी साकार हो जाए। 'बैर और फूट' के मंत्रसिद्ध देश में जन्म लेकर, इतने बड़े उपदेश के बावजूद हम-आप सभी संगी-साथियों के फेर में पड़े रहते हैं। इसे कलिकाल का प्रभाव न कहें तो और क्या कहें।

हद हो गई कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के भयंकर समर्थक प्रति वर्षोत्तरी पीढ़ियों के नौनिहाल नौजवान भी दिन-रात किसी न किसीका साथ निभाने के पीछे अपने-आपको तबाह किए रहते हैं। लड़कियों को सखा और सखाओं को सखियां भी चाहिए। मां-बाप प्रबन्ध करें या वे स्वयं—स्त्री-पुरुष दोनों को ही जीवन-साथी की चाहना भी अब तक हर वर्ष होती है।

ग्रगर यहीं तक बात थम जाती तो भी गनीमत थी, मगर एक जीवन-साथी के ग्रलावा हर एक को काम के साथियों की आवश्यकता भी पड़ती है ग्रौर मनबहलाव के साथियों की भी। काम और मनबहलाव दोनों ही ग्रच्छे-बुरे होते हैं ग्रौर साथ भी दोनों ही प्रकार के होते हैं। यहां तक तो दुभांत चलती है, मगर इसके बाद जहां तक साथ निभाने का प्रश्न है, वह चाहे ग्रच्छा हो या बुरा, हर हालत में बड़ा कठिन होता है।

एक दिन मेरे एक परिचित सज्जन मुझसे अपना दुखड़ा रोने लगे। बेचारे बड़े भले आदमी हैं। पढ़े-लिखे औसत समझदार, भावुक और काव्य-कलाप्रेमी युवक हैं। इनके दुर्भाग्य ने इनके साथ यह व्यंग्य किया कि इनके बचपन के एक सहपाठी मित्र को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का कवि बना दिया। एक समय में यह स्कूलख्यात कवि थे; वह कुछ भी नहीं था।··· इसी संदर्भ में इन सज्जन को कवियों के संग-साथ का चस्का लगा। उस दिन उन्हें उदास देखकर जब मैंने बहुत कुरेदा तो बोले : "ग्रापसे क्या कहें, साथ निबाहने के फेर में हम तबाह हो गए। और हमारा तो ठहरा कवियों का साथ, गोया करेले पर नीम चढ़ गया है। कच्चे धागों में मन को बांधकर जीने वाले इन कवियों-कलाकारों का साथ दुनिया-दिखावे के लिए तो ग्रवश्य बड़े गौरव की बात है। बड़े-बड़े ग्रंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय ग्रौर स्थानीय ख्याति के कवियों के साथ घूमते हुए देखकर लोगबाग हमें भी पांच सवारों में मानते हैं। मगर इसके बाद का हाल ?—ग्रजी कहां तक कहें, मजबूरी यह है कि हमारे पास शेषनाग की तरह हज़ार बातें नहीं हैं।"

हमारे एक कवि साथी एक बार एक बड़े दरबारी किस्म के कवि सम्मेलन में जाते समय हमारी नई घड़ी मांग ले गए। हम कोई धन्ना सेठ नहीं, हां, उम्दा चीज़ें रखने का शौक है। इसलिए धीरे-धीरे बचत के रुपये जोड़कर कभी-कभी अपनी मनचीती वस्तु खरीद लिया करते हैं। साढ़े तीन सौ रुपये का नया माल अपने कवि साथी को टेम्परारी तौर पर भी सौंप देने में हमें संकोच हुग्रा। भले ही हमें उनकी नीयत पर शक न हुग्रा हो, मगर यह भय तो था ही कि मूडी और लापरवाह स्वभाव के कवि जी मेरी घड़ी कहीं इधर-उधर रखकर भूल आएंगे ग्रौर हें-हें करके बैठ जाएंगे,

इधर हम बेमौत मारे जाएंगे। घड़ी की घड़ी जाएगी, ऊपर से जीवन-संगिनी महोदया की हज़ार अलाय-बलाय सहनी पड़ेगी। हमारा संकोच देखकर कवि जी के मन का एक कच्चा धागा टूट गया, तपकर बोले : "तुम ! तुम बुर्जुआ हो, अपने एक कवि मित्र का गौरव नहीं सहन कर सकते। तुम चूंकि कविता नहीं कर सकते मगर घड़ी खरीद सकते हो, इसलिए मेरे मान-सम्मान को अपने पैसे की शक्ति से दबाना चाहते हो'...।" फिर तो, मित्रवर कवि ठहरे, एक ज़बान से सौ-सौ वार कर चले। हार कर मैंने घड़ी दे दी। फिर...जिसका डर था वही हुआ। कवि जी ने आकर कह दिया कि घड़ी खो गई। सुनकर जब मेरा चेहरा उतर गया तो वो गरज कर बोले : "मैं ब्लड बैंक में अपना खून बेच-बेचकर चाहे क्यों न जमा करूं, मगर साढ़े चार सौ रुपये कहीं से भी लाकर तुम्हारे मुंह पर फेंक जाऊंगा। तुम महा नीच हो, मेरे जैसे महान् कवि के मित्र कहलाने के योग्य नहीं। आते ही तुमसे यह तो न पूछा गया कि कहो मित्र तुम्हें वहां कैसा यश मिला ? बल्कि अपनी ही घड़ी का रोना रोने बैठ गए।" जोश में आकर कवि जी कहते चले : "तुमने—तुमने अपनी घड़ी खो जाने की कचोट को एक बार भी मेरे अंतरतम में, मेरे मर्मस्थल में टटोलकर नहीं देखा और मुंह लटकाकर बैठ गए। तुम्हें क्या मालूम कि उसके खो जाने की पीड़ा से तड़पकर मैंने एक कविता लिख डाली है। अगर मालूम होता तो तुम्हें अपनी घड़ी के खो जाने पर अभिमान होता। लो सुनो, मैं तुम्हें अपनी कविता सुनाता हूं :

मेरे मित्र की घड़ी,
जाने कहां गिर पड़ी।
निर्धन मित्र के जाने कितने अरमानों
से अड़ी
बड़ी मुश्किलों से खरीदी हुई घड़ी—
जाने आज किस भाग्यवान् के हाथों पड़ी—
किसकी कलाई पर जड़ी ?
मेरे मित्र की घड़ी।"

यों घड़ी खोकर, साहित्य में उसके अमर हो जाने के गौरव से ही

संतोष कर मुझे बैठ जाना पड़ता तो भी चुप रहता मगर छह-सात महीने बाद मैंने अपनी वही घड़ी एक दिन दावत में कवि जी की कलाई पर बंधी देखी। उसपर मेरी दृष्टि पड़ने का आभास पाते ही वो झट मुस्कराकर बोले : "देखो, मैंने भी तुम्हारी ऐसी घड़ी खरीद डाली।" कलेजे पर पत्थर रख, साथ निभाने की निष्ठा से भर उठने का नाटक करते हुए मुस्कराकर कहा : "बधाई।"

हमारे साथियों में अगर एक ही कवि होता तो भी बचत थी, मगर यहां तो जनमपत्री में ऐसे ही ग्रह पड़े थे। मेरे बचपन के साथी एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कवि इस नगर में पधारने पर इस गरीब की कुटिया को ही अपनी चरणधूलि से पवित्र करते हैं। वे बड़े भाव से ऐलान किया करते हैं कि "मैं किसी बड़े होटल या बड़े आदमी के बंगले में ठहरने से कहीं अधिक अपने इस गरीब सहपाठी के यहां ठहरना पसन्द करता हूं। —भले ही इसके यहां ठहरने में मुझे बहुत-से कष्ट होते हों।" कवि महोदय यह कहकर अपने प्रशंसकों के भरे दरबार में बड़े प्रेम से हमारी ओर देखते हैं। सिवा इसके कि अपने इस महान् गौरव और सौभाग्य के कुएं में धम्म से कूद पड़ें और कर ही क्या सकते हैं। महाकवि जी और उनके प्रशंसकों की खातिर करते हमारा बैंक-अकाउण्ट खुश्क हो जाता है—मुर्गा अपनी जान से जाता है और खाने वाले को स्वाद नहीं आता। जो भी हो, साथ तो निभाना ही पड़ता है। अंतर्राष्ट्रीय कवियों के अलावा कई आल इंडिया स्टार-कवि भी मित्र हैं, इनके गलों पर लाखों सुननेवाले और सुननेवालियां निसार हैं। कवि सम्मेलनों में इनकी ऐसी धूम मचती है कि क्या बखान करें।

इनके घमंड की थाह हम आज तक न पा सके, ये लोग आपस में ही एक-दूसरे को भुनगा समझते हैं। मजा तब आता है जब कवि सम्मेलन समाप्त होने पर इनके चहेते ऑटोग्राफ लेने के लिए इनके चारों ओर गिद्धों की तरह गोल बांधकर जुटते हैं। कनखियों से हर कवि मुड़कर देखता है और तोलता है कि प्रशंसकों से किसका पलड़ा भारी है। फिर बाहर निकलकर शेखियां बघारी जाती हैं : एक कहता है, मैंने पचास ऑटोग्राफ्स दिए, दूसरा यह सुनकर भला चुप कैसे रहे, बोल उठता है,

मैंने लगभग अस्सी-नब्बे ऑटोग्राफ्स दिए और फिर, उसके बाद घबरा-कर, जान छुड़ाकर भागा। अपने-अपने शिष्यों और निकटतम प्रशंसकों के सामने स्टार-कवि का बस इतनी शेखी बघार देना बहुत काफ़ी हो जाता है। शिष्य फिर ले उड़ते हैं, इस हद तक ले उड़ते हैं कि चोंचें लड़ जाती हैं, आपस में जूतमपैजार हो जाता है। ऐसे में बीच वाले की बड़ी मरन होती है—किसको क्या समझाए ? हर स्टार-कवि अपने को कुतुबमीनार से कम ऊंचा नहीं समझता और मध्यस्थ से चाहता है कि वह उसे दूसरे से कम अज़कम पौन इंच तो लम्बा मान ही ले। ऐसों का मध्यस्थ बनकर बतलाइए कि हम किसका साथ निभाएं और किसका न निभाएं ?

शनि और लक्ष्मी की लड़ाई में मध्यस्थ होकर बीर बिकरमाजीत पर क्या कुछ न बीती। हम पर भी बीत चुकी है। खैर, अपनी क्या कहूं !

एक बार बाहर की दो संस्थाओं ने आपस की होड़ाहोड़ी में एक ही दिन में दो कवि सम्मेलन आयोजित किए। दोनों ने एक-एक स्टार-कवि को आमंत्रित किया। सितारे बस इसीको लेकर आपस में टकरा गए कि किसके कवि सम्मेलन में, किसके नाम से ज़्यादा भीड़ जमी। बात इतनी बढ़ी कि दोनों कवि अपनी मान-प्रतिष्ठा भूलकर आपस में ले-दही और दे-दही पर उतर आए। खैर, किसी तरह तत्तोथम्भो की गई और यह तय हुआ कि दोनों संयोजक दल और दोनों स्टार मिलकर नगर के एक प्रतिष्ठित अधिकारी के यहां कवि गोष्ठी में जाएंगे, वहां दोनों का कवितापाठ और सम्मान होगा, फोटो भी खिंचेगी। खैर साहब, अधिकारी के घर का मामला था, बगैर लड़े-भिड़े कवियों ने अपनी-अपनी कविताएं सुनाईं। हां, अपने-अपने प्रशंसक दल के छुटभैये कवियों को दोनों साथ ले गए थे जिससे एक की 'वाह-वाह' दूसरे से कम न हो। इसके बाद फोटो खिंची। फोटोग्राफ में बीच की कुर्सी पर बैठने वाला विशेष सम्मान का पात्र माना जाता है। अधिकारी महोदय सतर्क थे। उन्होंने दोनों कवियों को बीच में, अगल-बगल बराबर की कुर्सियों के साथ बिठलाने की व्यवस्था की थी मगर उनकी प्रशासनिक चतुराई की उड़ान से भी ऊंची अधेड़ जवान स्टार-कवियों की योजना-बुद्धि पहुंची। दोनों ही स्टार-कवि इस ताक में थे कि मध्यमूर्ति के रूप में वही प्रतिष्ठित हों। अधेड़ कवि जी इस संबंध

में अपनी योजना कारगर करने में सफल हो गए। जवान कवि जी ने अधेड़ कवि जी की इस चाल को नोट कर लिया। चेले दोनों के साथ थे। फोटो खिच गई। उसके बाद गोष्ठी विसर्जित हुई। बाहर आकर जवान कवि जी ठठाकर हंसे : "वो समझता होगा कि वह बीच में बैठा है। जब फोटो देखेगा तो उसे मालूम पड़ेगा कि बीच की कुर्सी पर मैं बैठा हूं।" इसके अंदर रहस्य यह था कि जब अधेड़ कवि ने एकमात्र अपने को बीच में लाने के लिए चुपके से अपने एक चेले के कान में किनारे वाली एक कुर्सी हटा देने का मंत्र फूंक दिया; और ऐन मौके पर दो-दो कुर्सियां चुपके से बढ़वा दीं और कुर्सियों के भूखे दो छुटभैये अफसर उसपर चट से बैठ भी गए। इस कुर्सीक्रम में चतुर जवान कवि जी बीच की कुर्सी के अधिकारी हो गए। समझ में नहीं आता कि विकट कहूं या ओछी परन्तु ऐसी अहंता-वालों का साथ निभाना बड़ा ही कठिन होता है।

और सुनिए, आपको एक रोमांटिक कवि का किस्सा सुनाते हैं। प्रेम करना कवियों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। भले ही कोई देवी जी उनसे प्रेम करें या न करें, भले ही कवि जी का चौखटा सुन्दर न हो, मगर वो सदा यही समझते हैं कि हर स्त्री उनपर आशिक हो जाती है। एक कवि महोदय हमारे यहां आया करते थे। हमारे कमरे की खिड़की के सामने पड़ोस वाले घर की खिड़की पड़ती थी। कवि जी ने एक दिन हमारी पड़ो-सिन को देख लिया, बस उसके बाद तो उन्होंने आफत ही ढानी शुरू कर दी। वे रोज़ आते, खिड़की के पास बैठते, जोर-ज़ोर से बातें करते। कवियों की बातों में सिवा आत्मप्रशंसा के और तो कुछ होता नहीं, अपनी तारीफों के पुल बांधते, अपनी प्रेम-कविताएं गा-गाकर सुनाते, संकेत के शब्द फेंकते। हमारी पड़ोसिन बेचारी बड़ी भली महिला थी। हमने कई बार कवि जी को समझाया। वो तमककर बोले : "तुम क्या जानो जी। मैं दावे से कह सकता हूं कि कैसी भी सती-साध्वी हो, साक्षात् स्वर्ग की देवी ही क्यों न हो, मेरे प्रेम-पाश से बचकर कोई स्त्री कहीं जा ही नहीं सकती। मैं प्रेम की टेक्नीक का मास्टर हूं, मास्टर।" इस तरह कवि जी अपनी करनी से बाज़ न आए। पड़ोसिन महिला ने हमारी गृहलक्ष्मी से उनकी शिकायत की। श्रीमती जी सत्याग्रह करने पर तुल गईं कि इस कवि का

घर में आना-जाना बंद करो। हम बड़े धर्मसंकट में पड़े—कवि-साथी का साथ निभाएं या जीवन-साथी का। कवि जी को यदि रोकते हैं तो बाहर जाकर वे अपनी करतूत तो कहेंगे नहीं उल्टे हमारी झूठी बदनामी ही जगह-जगह करते फिरेंगे। एक बार पहले भी हम इनसे भुगत चुके थे। डाकिया सौ रुपये का मनीऑर्डर लेकर आया। हमारे ससुर साहब ने कुछ सामान मंगाने के लिए वह रुपया भेजा था। यही कवि-साथी उस समय वहां बैठे थे। हम मनीऑर्डर फॉर्म पर दस्तखत करने में व्यस्त हुए और कवि जी ने डाकिए के हाथ से नोट लेकर गिनना आरम्भ किया। गिनकर उन्होंने वे नोट अपनी जेब में ऐसे इतमीनान से रक्खे मानो वे उनके लिए ही आए हों। हम बड़े घबराए, उनकी चिरौरी करने लगे। कवि जी बोले, "मेरा मूड खराब मत करो जी। देखते नहीं, कैसी घटा उमड़ी है, कैसा सुहावना मौसम है।" हमने भी इतनी बड़ी रकम को हाथ से यों न जाने देने का निश्चय कर लिया, एक बार कवि-मित्राई निभाने में घड़ी से हाथ धो ही चुके थे। हमने ज़बर्दस्ती रुपया छीन लिया। कवि जी तबसे आज तक हर जगह यही कहते फिरते हैं कि अपने घर बुलाकर इस व्यक्ति ने मेरी जेब से सौ रुपये के नोट ज़बर्दस्ती निकाल लिए। यहीं तक नहीं, उन्होंने एक कविता भी लिख डाली और भूमिका बांधकर वह कविता हर जगह सुनाते थे। इसी कारण से हम अपने इन रोमांटिक कवि-साथी को घर से निकालते हुए डर रहे थे। परन्तु हमारी पत्नी ने उन्हें घर से निकाल कर ही दम लिया।

इन घटनाओं से आप स्वयं ही सोच देखिए कि कवि का साथ निभाना कितना कठिन होता है।

'बैर और फूट' के तत्व-दर्शन कर पाने लायक दृष्टि मैंने इन सज्जन को दे दी है; यदि अमल में लाएंगे तो सुख पाएंगे। हरि ओम् बैर फूट तत्सत्।

१८

नये वर्ष के नये मनसूबे

नये वर्ष में हमारा पहला विचार अपने लिए एक महल बनवाने का है। बीते वर्षों में हम हवाई किले बनाया करते थे, इस साल वह इरादा छोड़ दिया क्योंकि हवा बुरी है। इस साल दो आफतें एक साथ फरवरी महीने में आ रही हैं---एक तो अष्टग्रही योग* और दूसरा एलेक्शन। इन दोनों ही का हुल्लड़ इतना है कि बहुत घबरा कर, चचा ग़ालिब की उक्ति में थोड़ी-सी तरमीम कर हम बार-बार अपने हज़रते दिल से यही गुहार रहे हैं कि—

रहिए अब ऐसी जगह चल कर जहां हुल्लड़ न हो
वोट मंगना हो न कोई ज्योतिषी कोई न हो
बे दरो दीवार का इक घर बनाना चाहिए
जिसमें कि कुण्डी न हो और पोस्टर चस्पां न हो

—दुखी हो गए हैं साहब! ठीक तरह से सवेरा भी नहीं हो पाता और दरवाज़े की कुण्डी खटकने लगती है। खोलकर देखिए तो कोई न कोई पार्टी वाले खड़े होते हैं। इनकी सूरतें देखते ही हमें फौरन मीयादी बुखार चढ़ आता है। चुनाव के दिनों में ये लोग वोटरों से बोलते नहीं बल्कि हिनहिनाते हैं: "हेंहेंहेंहें, हम आपकी सेवा में आए हैं। हेंहेंहेंहें हमारा चुनाव-चिह्न चूल्हा है। महंगाई में आजकल घर-घर के चूल्हे ठंडे हैं। हम अपने उम्मीदवार को उन्हीं ठंडे चूल्हों का सुलगता लक्कड़ बनाना चाहते हैं। हेंहेंहें आइए, हमारी मनोकामना पूरी कीजिए, हमारी लक्कड़ पार्टी को अपना कीमती वोट प्रदान कीजिए।" लक्कड़ पार्टी के बाद फक्कड़ पार्टी के बाद कंकड़-पत्थर पार्टी और फिर पार्टी पर पार्टी के लोग आ-आकर इतनी बार कुण्डी खटखटाते हैं कि हमारे दरवाज़े की

---

*यह लेख १९६१ में लिखा गया था जब अष्टग्रही योग की बड़ी चर्चा थी।

कुण्डी ढीली पड़ गई है, उसे तोड़ने के लिए चोरों को अब छैनी-हथौड़े की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, महज़ एक झटका ही काफी है। यह तो कुण्डी की दशा है, अब तनिक घर की दीवारों का मुलाहिज़ा फरमाइए—ऊपर से नीचे तक सब पार्टियों के पोस्टर ही पोस्टर चिपके हुए हैं। पिछली दीवाली पर कर्ज़ लेकर हमने दीवालों की पुताई करवाई थी, वह कर्ज़ अभी चुका भी नहीं पाए और दीवारों की हालत ये है कि···क्या कहें। बाहर की दीवालें देख-देखकर हमें स्वयं अपने ही घर में घुसने को जी नहीं चाहता, या घर में होते हैं तो बाहर निकलकर उनकी दुर्दशा देखने का साहस नहीं होता। कहीं गेरू से लिखा गया है—'फलाने जी को वोट दो।' उसपर तारकोल से 'क्रास' का निशान बनाकर नीचे लिखा गया है—'ढिमाके जी को वोट दो।' किसीने 'वोट' शब्द के अक्षरों की प्रूफ-मिस्टेक सुधारकर उसे भद्दी गाली बनाकर मज़ा लूटा है। किसीने किसी पोस्टर के ऊपर अपना पोस्टर चिपकाकर हमारी दीवाल पर कागज़ी पलस्तर चढ़ाया है। किसीने किसीका पोस्टर उखाड़ते हुए हमारी दीवाल की पपड़ियां उखाड़ डाली हैं। एलेक्शन वालों से प्रेरणा लेकर अष्टग्रही योग की आनेवाली प्रलय से घबराए हुए धर्मभीरुओं ने भी जगह-जगह लिख रक्खा है—पांच फरवरी को प्रलय होगी, उससे बचने के लिए हमारे राम नाम या कृष्ण नाम संकीर्तन मण्डल के सदस्य बनिए। किसीने लिखा है, "अष्टग्रहों से सावधान! अपनी जन्म-पत्री में मकर राशि का स्थान विचरवाइए, असली ज्योतिष मारडंड पंडित नागनाथ जी से अपने अष्टग्रहों की शान्ति करवाइए। फीस गरीब अमीर के जन-कल्याणार्थ हमने बहुत कम रक्खी है, सवा रुपिया जन्मकुण्डली दिखाई और सवा पांच रुपिया अष्टग्रह शांति के लिये जाते हैं।" यह हाल है और जग में हुल्लड़ इतना है कि हम शांति से बैठकर कुछ सोच या कर ही नहीं पाते। इसीलिए हमने 'स्पेस' में बे-दरो-दीवाल का एक महल बनवाने की नये वर्ष के इस नये दिन को ठानी है। कम से कम वहां ठग ज्योतिषियों और नकली नेताओं से तो नजात मिलेगी।

हमारा दूसरा ठोस मनसूबा है कि इस नये वर्ष में हम अपनी सैकड़ों सदियों पुरानी मातृभाषा का मुंह काला करके एक किराये की मादरी

ज़बान को अपने घर में ला बिठाएंगे। ये मातृभाषा, साहब, बड़ी खतरनाक वस्तु है। इसमें हम जो कुछ भी कहते हैं, वह हमारी बे-पढ़ी लिखी जनता तक समझ जाती है। यह बहुत ही बुरी और राष्ट्रघातक बात है। हम अपने राष्ट्रीय मनसूबों की बाबत महान्-महान् बातें सोचें और वह भी अपनी देसी ज़बान में ? छि: छि: छि: ! हम अपने मनसूबों का इतना बड़ा अपमान करें ? नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं। फिर हमारा शुमार पढ़े-लिखे बाबुओं में क्यों कर होगा, जाहिल किसान, मज़दूरों और लालालूली लोगों पर हमारे रौब का सिक्का क्यों कर जमेगा ? इसलिए हमारा दृढ़ मनसूबा है कि नये साल में हम अपनी मातृभाषा का त्याग कर एक महान् त्याग का आदर्श उपस्थित करेंगे।

हमारा तीसरा मनसूबा बड़ा ही सांस्कृतिक है। हम अपने कमरे से नटराज, बुद्ध और गांधी की मूर्तियां हटाकर उसे नये सिरे से सजाना चाहते हैं। हमारा विचार है कि चीनी किंवदंती के गांधी पोषित तीन बंदरों वाले खिलौने को चार बंदरों वाला बनाकर अपने कमरे में सजाएं। उनपर लिखा होगा : "बुरा देखो। बुरा बोलो। बुरा सुनो। बुरा करो।" हम एक सच्ची मिसाल देकर आपको इस नये 'मॉटो' (motto) का सत्य साबित कर दिखलाएंगे। अभी हाल ही में एक उपन्यास-लेखक हमसे मिलने के लिए घर पर पधारे थे। इन्होंने लगभग दो-ढाई सौ उपन्यास लिख, छाप और बेचकर अब तक लगभग चार-पांच लाख रुपया कमाया है। साहित्यिक दुनिया में इनका नाम कोई नहीं जानता पर वे सफल और महान् उपन्यासकार तो हैं ही। कहने लगे : "हम आपको अपना गुरु उसी प्रकार मानते हैं जिस प्रकार एकलव्य द्रोणाचार्य को मानता था। आपने हमें अपनी सामाजिक बुराइयों को देखना सिखलाया। इसलिए मैं अब केवल बुरा ही बुरा देखता हूं। मैंने अपने अमुक उपन्यास में एक बेचारी दीन-हीन सुन्दरी विधवा, दो बेचारी लोअर मिडिल क्लास की कालिज कन्याओं और एक बेचारी सुन्दरी स्टैनोग्राफर की दुःख-दलितहीन दशा का नग्न सत्य वर्णन किया है। एक चार सौ बीसिया सेठ अपने तीन कालेबाज़ारी सेठ मित्रों के साथ इन चारों रमणियों को चंद चांदी के टुकड़ों के वास्ते पतित करता है। मैंने अमुक प्रगतिशील आलो-

चक को ललकारकर कहा कि देखो मैंने यह प्रगतिशील चित्र अंकित किया है तो वे बोले कि यह अश्लील चित्र है। मैंने भी उनकी शेखी का जवाब दे दिया। मैंने कहा, जिसे तुम अश्लील कहते हो उस किताब की मैंने छह महीने में अठारह हज़ार प्रतियां वेची हैं। मैंने अश्लीलता में समाज की बुराई ही देखी है। मैंने अपने समाज की अश्लीलता की सच्ची तस्वीरें पेंट करके आग उगलने वाले शब्दों में अश्लीलता पर घोर प्रहार किया है। यही सच्ची प्रगतिशीलता है।" हमने कहा सच है, आपको बुरा देखना फला—और सही अर्थ में आप प्रगतिशील भी बने क्योंकि कल तक आप प्रूफरीडरी करते प्रेसों में चप्पलें चटकाते थे और आज बुरा देखने-दिखाने की बदौलत आपने स्वयं प्रेस-मालिक और मोटरशाली बनकर अपनी प्रगति की है। जब वो चले गए तब हम अपनी हालत पर गौर करने लगे। समाज का भला देखने और लेखक बनने के फेर में हमने कमाने की कौन कहे अपने बाप-दादों की कमाई भी घर-खर्च को 'डेफिसिट' से बचाने में फूंक डाली। जग के भले के पीछे अपना और अपने बाल-बच्चों का बुरा किया। लिहाज़ा क्या ये भला मनसूबा न होगा कि नये वर्ष में हम भी उन उपन्यास लेखक महोदय की तरह बुरा देखें, सुनें, बोलें और कहें ? चूंकि ये मनसूबा हमारा क्रांतिकारी है इसलिए सुनने वालों की नेक सलाह चाहते हैं। क्या बुरा है, हम सब अपने-अपने ही में सिमट जाएं, समाज को गोली मारें। अष्टग्रही योग के प्रताप से खंड-प्रलय आए या न आए मगर बुरा देखने, बोलने, सुनने और करने की तरकीब से दुनिया में महाप्रलय शर्तिया आ जाएगी, यह निश्चित है।

हमारे कुछ मनसूबे बड़े निजी किस्म के हैं—जैसे कि हमारा गरम कोट फट गया है। पिछले कई वर्षों के कई नये दिनों पर हमने ये मनसूबा साधा कि इस बार तो बनवा ही लेंगे पर न बनवा पाए, हाल की सर्दी में कांपते कलेजे से हम यही सोचते रहे कि इस नये साल में कोट अवश्य सिलवाएंगे। देखिए पूरा होता है या नहीं। आज सुबह से ही हम ये मनसूबा भी बांध रहे हैं, नये वर्ष के नये दिन पेट भरकर गाजर का हलुआ

खाएं, मगर घरवाली नाक सिकोड़कर ताना मारती हैं कि घर में नहीं दाने ग्रौर आप चले भुनाने ! भला ये लेखक का मुंह ग्रौर गाजर का हलुग्रा !—खैर, ये तो मनसूबा है और हम पहले ही ग्रर्ज कर चुके कि मनसूबे केवल बांधे जाने के लिए ही होते हैं, पूरे करने के लिए नहीं ।

बाबू पुराण

परम सुहावन महाफलदायक इस बाबू पुराण को पढ़ते-सुनते आज के युग में कोई सूत, शौनक, काक भुशुंडि या लोमहर्षक यदि यह पूछ बैठे कि अद्भुत क्रान्तिकारी महामहिम बाबू आखिर हैं कौन, तो मेरे जैसे साधारण साहित्यसाधक के लिए सर्वसंतोषदायक उत्तर देना ज़रा कठिन हो जाएगा। अतः प्रश्न को टालने के लिए एक प्रश्न सुनाता हूं।

रेल के भीड़-भरे थर्ड क्लास कम्पार्टमेंटों में ऊपर की सीट यदि खाली मिल जाए तो स्वर्ग-सुखदायिनी होती है। सो इस राजगद्दी के लिए भी ब्लैक का फलता-फूलता धंधा चल पड़ा है। एक बार सुखद यात्रा के निमित्त एक बाबू साहब ने ब्लैक वाले छोकरे से राजगद्दी के लिए सौदा पटाना आरंभ किया। सौदा कम्पार्टमेन्ट के दरवाज़े पर खुसफुस स्वरों में चल रहा था, पास ही अपने होल्ड-आल पर दबे-भिचे एक दूसरे बाबू साहब इस सौदा-वार्ता को सुन रहे थे। उनके मन में बाबुओचित चतुराई उदय हुई। ज्यों ही एक रुपया लेकर ब्लैक वाले ने अपनी दरी समेटी त्यों ही दूसरे बाबू साहब ने ऊपर की सीट पर अपना होल्ड-आल फेंक दिया। ब्लैक वाला तो यह लीला देखते ही अपनी काली कमाई का रुपया और दरी उठाकर दरवाज़े की भीड़ चीरता हुआ ये जा, वो जा, उधर रुपया देकर सीट खरीदने वाले बाबू एकदम लाल भभूका हो गए, बोले—बिस्तरा हटाइए।

दूसरे ने बिस्तर खोलते हुए उत्तर दिया—क्यों हटाऊं, खाली बर्थ पर जो बिस्तर जमा ले उसीका अधिकार है।

पहले बाबू का रुपया और रात-भर का सुख-चैन खटाई में पड़ा जा

यह निबंध स्वाधीनता-प्राप्ति से पूर्व लिखा गया था और 'हंस' में प्रकाशित हुआ था।

रहा था, वे एकदम से गरज पड़े, कहा—पर मैंने इसके लिए रुपया दिया है।

दूसरे बोले—मैं यह सब कुछ नहीं जानता। कानून दिखाइए, आपने कैसे ये सीट रिज़र्व कराई है?

बाबू के मुख से और बाबू के सामने 'कानून' शब्द निकलते ही वाक् युद्ध में प्रलयंकारी गर्मी उत्पन्न हो जाती है और वह बाबुओं की मातृ-भाषाओं को झुलसा देती है। उक्त अवसर पर भी यही हुआ। बाबुओं की कानूनी शक्ति को सम्भालने के लिए उनकी जिह्वाओं पर अंग्रेज़ी भाषा चट से प्रकट हो गई और साथ ही अंग्रेज़ों का रोब भी उनकी हिन्दुस्तानी देहों में दमकने लगा। गर्मागर्मी का चढ़ाव 'डू यू नो हू आई एम' (जानते हो मैं कौन हूं) और 'आल राइट आई विल सी' (अच्छा, देख लूंगा तुम्हें) तक पहुंचकर उतरने लगा।

यह 'डू यू नो हू आई एम' और 'आई विल सी यू' का ज़ोम ही इस देश की बाबू सभ्यता में सार्वभौमिक रूप से व्याप्त है। यह ज़ोम और 'योर मोस्ट हंबल सर्वेन्ट' (आपका अति विनीत सेवक) का दैन्य बाबू रूपी थर्मामीटर का अनवरत गति से चढ़ता-उतरता पारा है और इसीके बीच में उसकी समस्त क्रान्तियों का इतिहास उभरकर उसे और उसके देश को नया गौरव प्रदान करता रहा है। एक तरह से यह मानने काबिल बात है कि आर्यों और नागों के बाद भारतवर्ष के इतिहास को यदि सामूहिक रूप से किसीने सबसे अधिक प्रभावित किया है, तो बाबुओं ने ही। बाबुओं ने भारतीय सभ्यता को नया अर्थ दिया है और उसका अनर्थ भी किया है। आर्यों के द्वंद्व के समान ही बाबुओं ने अनेक पुरानी मान्यताओं को अपने ज़ोम के वज्र से तोड़ा है। पुरन्दर के समान अनेक रूढ़ियों में आग लगाई है, हिन्दुस्तान की प्राचीन मर्यादाओं के बांध तोड़ करके क्रान्तियों के सैलाब पर सैलाब लाए हैं। पिछली एक शताब्दी का भारतीय इतिहास बाबुओं की अगति, गति और विकास का ही इतिहास है।

यों तो बाबू सभ्यता का जन्म उन्नीसवीं सदी के पहले-दूसरे दशक से ही आरम्भ हो गया था, पर उसकी जवानी गदर के बाद ही परवान चढ़ी। मैकाले की नीति के अनुसार बाबू बनाने के लिए अंग्रेज लोग हिन्दुस्तानी

जवानों को अंग्रेज़ी पढ़ने की लालच-भरी प्रेरणा देने लगे।

गदर से पहले बादशाही-नवाबी ज़माने में महंगाई सिर उठाने लगी थी। इसके और जो भी कारण रहे हों मगर एक कारण मुख्य रूप से स्पष्ट है। शाही विलासिता ने गांवों को बुरी तरह चूसना आरम्भ कर दिया था। शासन-प्रबन्ध में रिश्वत और लूट के सिद्धान्त को छोड़कर और कोई भी नियम और न्याय लागू ही न होता था। शासन तंत्र के वाहर भी जिसकी लाठी उसकी भैंस का सिद्धान्त ही लोक-प्रचलित था। खेती, ज़मीन-जायदाद और स्त्रियों का अपहरण करना ही शौर्य का सर्व-श्रेष्ठ लक्षण माना जाता था। राहज़नी और बटमारी अपनी सीमा पर पहुंच गई थी। ऐसी दशा में अनास्था और महंगाई का बढ़ना अनिवार्य था। अंग्रेज़ धीरे-धीरे पैर जमाते जा रहे थे। भारतीय साहूकारों और सामन्तों से उनके गठबन्धन मज़बूत हो रहे थे। इनके सहारे अंग्रेज़ प्रच-लित शासन तंत्र की जड़ें खोद रहे थे। इस बार उनका महत्व खूब बढ़ गया था। बहुत-से सामंत और साहूकार, जिन्हें बादशाही-तंत्र से किसी प्रकार का आघात लगता, अंग्रेज़ों की शरण में अपने स्वार्थवश जाते थे। अंग्रेज़ों की साख बढ़ गई थी। छोटे-मोटों की कौन कहे, शासक वर्ग के लोग भी अपना रुपया कम्पनी सरकार में जमा करते, कम्पनी सरकार के बांड खरीदते। इस व्यावसायिक-राजनैतिक रिश्तेदारी के कारण उभय पक्ष को एक-दूसरे की भाषाएं जानने की आवश्यकता हुई। गदर से पहले जिन क्षेत्रों में अंग्रेज़ी अमलदारी हुई, वहां अंग्रेज़ी के जानकार भारतीयों की आवश्यकता हुई।

इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अब सामाजिक-आर्थिक परि-स्थिति देखिए। साहूकारी मुख्यत: बनियों के हाथ में थी और ताल्लुकेदारी-ज़मींदारी ठाकुरों और मुसलमानों के अधिकार में। ब्राह्मणों एवं कायस्थों में कुछ घराने अवश्य ठकुरैती भोगते थे पर ऐसे घराने केवल कुछ ही थे। ब्राह्मणों के मुख्यत: चार धंधे थे—खेती, यजमानी, मुनीमत और सिपाहीगिरी। कायस्थ उर्दू-फारसी पढ़कर शाही नौकरियों में खप जाते थे। अमीर खत्रियों के हाथ में बज़ाज़ा और साहू-कारा था, गरीबों के हाथ में मुनीमत। गांवों की महंगाई से तंग आकर

अनेक ब्राह्मण युवक अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए लालायित होते थे। अंग्रेज़ी के लिए यह बात शुभ थी। यदि श्रेष्ठ वर्ण के लोगों में अंग्रेज़ी का प्रचार हो जाए तो इतर वर्णों में भी सहूलियत से अंग्रेज़ी की घुसपैठ संभव हो सकती थी।

गदर से प्रायः सौ वर्ष पूर्व से ही कम्पनी सरकार के डाइरेक्टर और अनेक विद्वान इस बात पर ज़ोरदार बहस करने लगे थे कि हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज़ी सिखा दी जाती है। वे फिर अपने देश, जाति और धर्म से घृणा करने लगते हैं और पूरी तौर पर अंग्रेज जाति तथा पश्चिमी सभ्यता के भक्त हो जाते हैं।

इसी वज़न पर एक दूसरे विद्वान का मत भी अपने-आपमें बड़ा पुष्ट दिखलाई देता है। उनका खयाल था कि भारतीय अपनी विभिन्न भाषाओं और जातियों के दायरे में बंधकर जितना ही अलग-अलग रहें उतना ही ब्रिटिश शासन के लिए शुभ होगा। इसी विद्वान ने यह भी कहा था कि अंग्रेज़ी भाषा की एकसूत्रता से बंधकर भारत की राष्ट्रीय भावना जाग उठेगी। दोनों ही बातें सच हुईं और साथ सच हुईं। बादशाही के अनियंत्रित शासन के बाद ब्रिटिशों की 'डिसिप्लिन' हर अंग्रेज़ी पढ़ने वाले युवक को पसंद आने वाली वस्तु थी। यह बिलकुल सच बात है कि सामंती हुकूमतों के बहुत बुरे शासन-प्रबन्ध के बाद अंग्रेज़ों का शासन-प्रबन्ध हिन्दुस्तानी जनता को बहुत भाया था। रास्ते बटमार-डाकुओं से साफ हो गए थे। बाज़ार-हाट में प्रजा की सुरक्षा थी। दासों में भी अच्छा जीवन बिताने की इच्छा तथा अच्छे-बुरे मालिक की पहचान तो आखिर होती ही है, सदियों के दास भारत ने अपने पुराने मालिकों से नये मालिक को लाखगुना बेहतर समझा और सराहा। हिन्दी के भारतेन्दु-कालीन कवियों में प्रायः सभी ने मलका विक्टोरिया के राज को सराहा है। गदर के तुरन्त बाद ही भारत में अंग्रेज़ी और मलका विक्टोरिया के प्रति सहसा इतना आदर और भक्तिभाव उमड़ पड़ना पहली दृष्टि में आश्चर्यजनक लगता है। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र आदि अंग्रेज़ जाति के चाटुकार न थे मगर अंग्रेज़ी शासन के वे सभी गहरे भक्त थे। उनकी राजभक्ति में यही भक्ति बोलती थी।

अंग्रेज़ी-पठन क्रान्ति

बाबुओं में सबसे पहली क्रान्ति यही थी। शहरों में विलायती मेमें ईसाई भिक्षुणियों के रूप में बड़े-बड़े घरों में आती थीं। साहब-शासन की पुरतानियों (पुरोहितानियों) को यद्यपि कोई अपने घर में न आने के लिए तो कहने की हिम्मत नहीं कर सकता था, परन्तु उनके घर से जाने के बाद सारा घर पानी से धोया जाता था। मिशन के स्कूल जगह-जगह खुलने लगे थे। ईसाई पादरी, अध्यापक और डाक्टर भारतीय युवकों में घूम-घूमकर लोगों को अपनी सेवा से संतुष्ट करते हुए अंग्रेज़ी पढ़ने का आग्रह करते थे। हमारे रहन-सहन, रीति-रिवाज, देवी-देवता, इतिहास-दर्शन सभी को हमारे ही मुंह पर दो कौड़ी का सिद्ध किया जाता था। और उसके साथ ही साथ प्रभु यीशु के धर्म तथा अंग्रेज़ों की भाषा सीखने के लाभ बतलाए जाते थे। स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र के एक लेख 'दबी हुई आग' में हमारे उस जातीय अपमान की झांकी मिलती है, जो ईसाई मिशनरी लोगों के द्वारा निरन्तर किया जाता था। ईसाई पादरी अपना जूता दिखाकर हिन्दू बालकों से कहते थे कि यह तुम्हारे देवता हैं। अपने स्कूलों में ही नहीं वरन् महाजनी पाठशाला में भी गुरुओं को दो-चार रुपये दक्षिणा चटाकर ये पादरी अपने धर्म-प्रचार के हेतु हमारे धर्म और देवताओं की निन्दा किया करते थे। इतना ही नहीं, तस्वीरें, किताबें और मिठाइयां वगैरह बांटकर वे छोटे बच्चों को ऐसे गीत सिखलाते जिनसे बच्चों के अन्दर स्वधर्म के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो।

माला लक्कड़, ठाकुर पत्थर, गंगा निरबक पानी।
राम कृष्न सब झूठे भैया चारों बेद कहानी।।

इस प्रकार की अपमानजनक बातों ने भारतीय जनता में बहुत क्षोभ भर दिया। गदर में अंग्रेज़ों के प्रति भारतीय जनता के विरोध का एक प्रबल कारण यह भी था। इस देश की जनता अपने धर्म की निन्दा करने वालों को कभी सहन नहीं कर पाई। भले ही उनके अत्याचारों और अपनी निर्बलता के कारण वह ऐतिहासिक परिस्थितियों से अनेक बार

विवश हो गई हो। गदर के बाद अंग्रेज़ी भाषा के प्रचार में इज़ाफा करने के लिए दो बातें अलग-अलग कर दी गई थीं। अंग्रेज़ सरकार की नौकरी पाने के लिए अंग्रेजी भाषा ही सीखना आवश्यक था, न कि ईसाई धर्म कबूल करना। इस स्पष्टीकरण ने बड़ा काम किया। मिशनरी स्कूलों के अलावा अनेक सरकारी स्कूल भी खुले। वे अनेक युवक जो अपने धर्म के प्रति गूंगी अनास्था रखते हुए भी ज़ाहिरा तौर पर उसे त्यागकर ईसाई नहीं बनना चाहते थे, अंग्रेज़ी पढ़कर उम्दा नौकरी पाने के लिए लालायित हो उठे। कुछ दुनियादार बापों ने अपने बेटों को अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए स्वयं उकसाया। यों अधिकतर युवकों ने अपने पुरखों से आदरपूर्वक विद्रोह कर अंग्रेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। सन् १८७५—८० के लगभग अवध क्षेत्र में अंग्रेज़ी राज्य के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत लगभग १४०० छोटे-बड़े स्कूल थे जिनमें लगभग ७० हज़ार विद्यार्थी पढ़ते थे। अंग्रेज़ी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या पांच हज़ार थी।

गांव के एक ब्राह्मण युवक ने शहर के अंग्रेज़ी स्कूल में नाम लिखाने के बाद लगातार छह वर्ष तक अपने पिता का आमना-सामना नहीं किया। वे लुक-छिपकर अपने गांव जाते थे और माता से मिलते थे। बहुत-से घरों में पिताओं का विद्रोह अपने पुत्रों के विद्रोहों से समझौता करने लगा। मेरे पितामह और उनके भाई स्कूल में जब तक रहते पानी नहीं पीते थे। स्कूल से लौटने के बाद घर के बैठकखाने में वे कपड़े टांग दिए जाते थे। अंगौछा पहनकर नंगे बदन अंदर जाना, फिर हाथ-पैर और जनेऊ धोकर जल ग्रहण करना—यह नियम मेरे पितामह और भाइयों तक ही सीमित नहीं था। मैंने अनेक प्रकार के ब्राह्मण बुज़ुर्गों से इस ज़माने का यही चलन सुना है।

देहाती मेलों में घोड़े पर अंग्रेज के जाने की बात भी मैंने अक्सर सुनी है। घोड़े पर अंग्रेज़ डाक्टर जाता है, अंधों की आंखें ठीक कर देता है, अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार करता है, अंग्रेजी पढ़ जाने पर अच्छी नौकरी दिला देने का भरोसा भी देता है। अंग्रेज़ी पढ़ जाने के बाद गांव के जमीं-दार-साहूकार और बड़े से बड़े प्रतिष्ठित आदमी से भी साधारण किसान के बेटे की इज़्ज़त और हैसियत अधिक बढ़ जाएगी, यह प्रलोभन पद-

दलित कुलीन किसानों को वश में करता जा रहा था। एक सज्जन ने अपने संस्मरण में मुझे यह सुनाया कि जब पिता की स्वीकृति पाकर वे आगरा के स्कूल में पढ़ने आए तो उस गांव के एक बहुत प्रतिष्ठित महाजन उनकी जाति की नेता ने उनके पिता को बुलाकर पूछा—क्यों जी केशव-राम, (कोई भी नाम) तुम्हारा लड़का शहर में अंग्रेजी पढ़ता है ?

केशवराम विनयपूर्वक गिड़गिड़ाकर बोले—मुझे तो मालूम नहीं दाऊ, मुझसे तो मिलकर भी नहीं गया; अपनी मां से कह गया है कि वह कुछ सीखने जा रहा है।

दाऊजी ने केशवराम जी को बहुत डांटा-फटकारा और मुंह चिढ़ाते हुए कहा—अंग्रेज़ी पढ़ाकर हाकिम बनाएगा, हमसे बराबरी करेगा।

उन्होंने बहुत ऊंच-नीच समझाया। धर्म के आगे अंग्रेज़ सरकार के हाकिम को भी झुकना पड़ेगा, बिरादरी से निकाल दिए जाओगे, वगैरह।

इन धमकियों के साथ केशवराम जी के पुत्र पढ़ते रहे और एक दिन छोटे-मोटे हाकिम बने।

जी-हुज़ूर क्रांति

गदर से लगभग १५ वर्ष बाद ही अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों की बिरादरी काफी बढ़ गई थी। मिडिल और स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट ही नहीं, कुछ लोग तो बी० ए० और एम० ए० तक भी ढैया छूने लगे थे। अंग्रेज़ी के सर्टिफिकेट बटोरना और फिर उनकी चर्चा कर शेखी बघारना अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे वर्ग अर्थात् बाबू वर्ग की चलती-फिरती विशेषता बन गई। अंग्रेज हाकिम को नौकरी के लिए अर्जी देते समय हिन्दुस्तानी अदबो-आदाब के बड़-बड़े अजीबो-गरीब उल्थे किए जाते थे।

अति आदरणीय हुज़ूर,

बड़े विश्वस्त सूत्र से यह जानकर कि आपके बड़े काइन्ड कन्ट्रोल में एक क्लर्क की जगह खाली हुई है मैं बड़ी आज़िज़ी के साथ, दस्तवस्ता, हुज़ूर की खिदमत में यह अर्जी लगाता हूं।

मेरी योग्यता के बारे में मोस्ट हम्बली निवेदन है कि मैं बहुत ही रिस्पेक्टेबिल फेमिली का हूं तथा मेरे पुरखे भी सदा से इंग्लैंड की क्वीन

मलका विक्टोरिया तथा अंग्रेज़ के लायल रहे हैं। मैं भी हुज़ूर को यह आश्वासन दिलाता हूं कि हुज़ूर को हर मौके पर अपनी लायल्टी से संतुष्ट रखूंगा।

मैं दर्जा···(४-५ क्लाइमेक्स मिडिल तक) अंग्रेज़ी पढ़ा हूं तथा देव नागरी और फारसी (दोनों या किसी एक) का अच्छा अभ्यास है।

मेरे आदरनीय हुज़ूर, यदि इस मोस्ट हम्बुल एंड लायल सर्वेन्ट को अपने संरक्षण में लेंगे तो मैं हुज़ूर को पूर्ण सन्तोष प्रदान करने के हेतु कोई पत्थर वगैर उल्टाए न रहूंगा (शैल लीव नो स्टोन अनटर्न्ड)। हुज़ूर की दीर्घ आयु और उन्नति के लिए, हुज़ूर की मेम साहब और बाबा लोगों की उन्नति के लिए जब तक जिऊंगा गाड आलमाइटी से नित्य दुआ मांगा करूंगा और मेरे बाद मेरे बच्चे भी यही दुआ करते रहेंगे और हुज़ूर का यश जब तक सूरज और चांद रहेंगे—(यावत चन्द्र दिवाकरौ) सारी दुनिया में कायम रहेगा।

मैं हूं हुज़ूर का मोस्ट
हम्बुल सर्वेन्टस् सर्वेन्ट
(दासानुदास का अंग्रेज़ी अनुवाद)

अंग्रेज़ी भाषाविद्, हुज़ूर के इस दासानुदास ने पगड़ी उतारकर फेल्ट टोपी पहनी और लम्बा कालरदार कोट, वास्कट और नेकटाई-पतलून डाटकर उसने अपने-आपको अंग्रेज़ों से भी अधिक विलायती मानना आरम्भ कर दिया। एक ऐसी लहर चली कि जिसमें अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बाबू को हर हिन्दुस्तानी चीज़ से नफरत हो गई थी। अपने अंग्रेज़ हाकिमों तथा पादरियों के समान ही ये पढ़े-लिखे बाबू भी वेदों को जंगलियों की गीतों की किताब कहने लगे थे। उन्हें हिन्दुस्तानी भोजन से अरुचि होने लगी थी; डबल रोटी और मांस-मदिरा तथा धूम्र-पान उस समय बाबुओं के लिए एक बहुत बड़ी क्रान्तिकारी एवं आवश्यक वस्तु हो गई थी। गांधी जी की आत्मकथा में उनके मांसाहार वाले प्रसंग में उनके मित्र का जो तर्क है वह उस समय का प्रायः सार्वभौमिक तर्क माना जा सकता है। मांस खाने वाले जवान अमांसाहारियों से प्रायः यही कहते कि मांसाहार से मनुष्य बलवान होता है, अंग्रेजों की बल-बुद्धि

का एकमात्र कारण मांस और मदिरा ही है। यह होते हुए भी जहां तक मुझे पुराने बाबू साहबों से पूछताछकर मालूम हुआ है वहां तक मैं निश्चित रूप से यह कह सकता हूं कि हिन्दुओं ने बाबू बनकर भी, विद्रोही बनकर भी अंग्रेज़ों की समानता पाने के लिए कभी गोमांस ग्रहण नहीं किया। अपवाद रूप में दस-पांच अति विद्रोही बाबू शायद हुए हों तो हुए हों।

जी हुज़ूर बाबू अंग्रेज़ी पढ़कर अंग्रेज़ों की तरह ही हिन्दुस्तानी बोलना भी सीख गए। आटा-जाटा, वैडमास, डर्टी निगर, काला आदमी कहने में उन्हें मज़ा आता था। अंग्रेज़ साहबों के सामने दुम हिलाना और स्वदेशवासियों के सामने गुर्राना एक आम फैशन की बात हो गई थी।

एक सबसे खराबी की बात बाबू दृष्टि से यहां पर यह थी कि उन्हें अंग्रेज़ों के समान स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी मेमों को लेकर बाहर घूमने का मौका नहीं मिलता था। आम तौर पर ये बाबू अपनी पत्नियों और घर की स्त्रियों से घृणा करने लगे थे। स्त्रियां बबुआइनें नहीं हो पाई थीं। जिस प्रकार के खान-पान और आचरण में बाबू का रस उमग चुका था, उसमें भारतीय नारी के लिए अधर्म और अनाचार के सिवा और कुछ भी न था। बाबू ने अपने मनोरंजन के लिए एक समझौता किया, वह वेश्यागामी हो गया। वेश्यागामिता इसके पहले केवल रईसों और सामन्तों के बीच ही अति प्रचलित थी। औसत आमदनी के लोग इस लम्बे खर्च वाले मनोरंजन को बर्दाश्त ही नहीं कर सकते थे। लेकिन बाबू के लिए यही समझौता श्रेयस्कर था। आदाब अल्काब, शीरी गुफ्तगू और मैनोशी के लिए तवायफ का कोठा उम्दा जगह थी। वहां जाकर बाबू की हिन्दुस्तानी ज़बान भी सुधर जाती थी। नये बढ़ते हुए बाबू वर्ग में वेश्यागामिता प्रायः एक आन्दोलन के रूप में आई। वे दिन भारतीय पत्नियों के लिए बहुत ही बुरे थे। हमारी स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले ढोलक के गीतों में वेश्याओं के विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया है :

रंडी घर जाना छोड़ो सनम…… ।।रंडी घर०।।
सोने की थलिया में भोजन परोसा

सौतन संग खाना छोड़ो सनम······ ।।रंडी घर०।।
सोने की शीशी मीने का प्याला
रंडी संग पीना छोड़ो सनम······ ।।रंडी घर०।।

एक गीत में कहा गया है :

जब से चला है रंडी का रखना
कदर बीवी की—कदर प्यारी की गई मेरी जान

इस प्रकार के कई गीत उस ज़माने में रचे गए थे।

इसी जी-हुज़ूर क्रान्ति में बाबुओं ने अपने नामों के साथ अपने जाति नाम भी जोड़ने शुरू कर दिए थे। शर्मा, वर्मा, राजवंशी, यदुवंशी, सक्सेना, श्रीवास्तव, कपूर, मित्र, बाजपेई, नागर—इन सबकी जुड़ाई इसी वक्त में हुई। नाम रखने में भी सतर्कता बरती जाने लगी—मांगीलाल, घूरेलाल, सद्दीमल, मटरूमल, झब्बन लाल, दूधनाथ आदि किस्मों के नाम भला अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों को क्योंकर पसन्द आ सकते थे। सद्दीमल एस० माल हो गए, देवी प्रसाद कपूर डी० पी० कैम्फर हो गए, बाबू राजकिशोर अंग्रेज़ी कोट-पतलून में बहुत अकड़े तो शराब के झोंक में अपने नाम की अंग्रेज़ी स्पेलिंग को उल्टाकर जे० इरोक्सा हो गए। हां, स्त्रियों के नामों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तीन दशकों में जन्म लेने वाली हमारी दादियां मटका, डिब्बा, चुहिया, कुल्हड़, बतासो, मीरो, कल्लो, झुन्नो, मुन्नो आदि ही बनी रहीं।

हमारी पितामह पीढ़ी में सब अधर्मी और कुकर्मी ही बने हों सो बात नहीं, बहुतों में अंग्रेज़ी पढ़ने के बाद राष्ट्रीय भावना और स्वाभिमान भी जागा। अंग्रेज़ जाति के प्रति आदर-भाव रखते हुए भी उन्होंने अपने देश और धर्म को हीन मानने से दृढ़तापूर्वक इंकार किया। गदर के बाद बाबू का व्यापक प्रसार होने के साथ ही साथ हम यह भी देखते हैं कि इस देश में सामाजिक सुधार आंदोलनों का जन्म हुआ। वेद, उपनिषद् और गीता ने इस बाबू वर्ग की आध्यात्मिक ही नहीं राष्ट्रीय भावना को भी बड़ा बल दिया, और इसी बल के साथ उन्होंने मूर्ति-पूजा और रूढ़ियों के खिलाफ जेहाद भी ठाना। बंगाल के ब्रह्म समाज, बम्बई के प्रार्थना

का एकमात्र कारण मांस और मदिरा ही है। यह होते हुए भी जहां तक मुझे पुराने बाबू साहबों से पूछताछकर मालूम हुआ है वहां तक मैं निश्चित रूप से यह कह सकता हूं कि हिन्दुओं ने बाबू बनकर भी, विद्रोही बनकर भी अंग्रेज़ों की समानता पाने के लिए कभी गोमांस ग्रहण नहीं किया। अपवाद रूप में दस-पांच अति विद्रोही बाबू शायद हुए हों तो हुए हों।

जी हुज़ूर बाबू अंग्रेज़ी पढ़कर अंग्रेज़ों की तरह ही हिन्दुस्तानी बोलना भी सीख गए। आटा-जाटा, वैडमास, डर्टी निगर, काला आदमी कहने में उन्हें मज़ा आता था। अंग्रेज़ साहबों के सामने दुम हिलाना और स्वदेशवासियों के सामने गुर्राना एक आम फैशन की बात हो गई थी।

एक सबसे खराबी की बात बाबू दृष्टि से यहां पर यह थी कि उन्हें अंग्रेज़ों के समान स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी मेमों को लेकर बाहर घूमने का मौका नहीं मिलता था। आम तौर पर ये बाबू अपनी पत्नियों और घर की स्त्रियों से घृणा करने लगे थे। स्त्रियां बबुआइनें नहीं हो पाई थीं। जिस प्रकार के खान-पान और आचरण में बाबू का रस उमग चुका था, उसमें भारतीय नारी के लिए अधर्म और अनाचार के सिवा और कुछ भी न था। बाबू ने अपने मनोरंजन के लिए एक समझौता किया, वह वेश्यागामी हो गया। वेश्यागामिता इसके पहले केवल रईसों और सामन्तों के बीच ही अति प्रचलित थी। औसत आमदनी के लोग इस लम्बे खर्च वाले मनोरंजन को बर्दाश्त ही नहीं कर सकते थे। लेकिन बाबू के लिए यही समझौता श्रेयस्कर था। आदाब अल्काब, शीरी गुफ्तगू और मैनोशी के लिए तवायफ का कोठा उम्दा जगह थी। वहां जाकर बाबू की हिन्दुस्तानी ज़बान भी सुधर जाती थी। नये बढ़ते हुए बाबू वर्ग में वेश्यागामिता प्राय: एक आन्दोलन के रूप में आई। वे दिन भारतीय पत्नियों के लिए बहुत ही बुरे थे। हमारी स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले ढोलक के गीतों में वेश्याओं के विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया है:

रंडी घर जाना छोड़ो सनम······ ।।रंडी घर०।।
सोने की थलिया में भोजन परोसा

सौतन संग खाना छोड़ो सनम······ ।।रंडी घर०।।
सोने की शीशी मीने का प्याला
रंडी संग पीना छोड़ो सनम······ ।।रंडी घर०।।

एक गीत में कहा गया है :

जब से चला है रंडी का रखना
कदर बीबी की—कदर प्यारी की गई मेरी जान

इस प्रकार के कई गीत उस ज़माने में रचे गए थे।

इसी जी-हुज़ूर क्रान्ति में बाबुओं ने अपने नामों के साथ अपने जाति नाम भी जोड़ने शुरू कर दिए थे। शर्मा, वर्मा, राजवंशी, यदुवंशी, सक्सेना, श्रीवास्तव, कपूर, मित्र, बाजपेई, नागर—इन सबकी जुड़ाई इसी वक्त में हुई। नाम रखने में भी सतर्कता बरती जाने लगी—मांगीलाल, घूरेलाल, सट्टीमल, मटरूमल, झब्बन लाल, दूधनाथ आदि किस्मों के नाम भला अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों को क्योंकर पसन्द आ सकते थे। सट्टीमल एस० माल हो गए, देवी प्रसाद कपूर डी० पी० कैम्फर हो गए, बाबू राजकिशोर अंग्रेज़ी कोट-पतलून में बहुत अकड़े तो शराब के झोंक में अपने नाम की अंग्रेज़ी स्पेलिंग को उल्टाकर जे० इरोक्सा हो गए। हां, स्त्रियों के नामों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तीन दशकों में जन्म लेने वाली हमारी दादियां मटका, डिब्बा, चुहिया, कुल्हड़, बतासो, मीरो, कल्लो, झुन्नो, मुन्नो आदि ही बनी रहीं।

हमारी पितामह पीढ़ी में सब अधर्मी और कुकर्मी ही बने हों सो बात नहीं, बहुतों में अंग्रेज़ी पढ़ने के बाद राष्ट्रीय भावना और स्वाभिमान भी जागा। अंग्रेज़ जाति के प्रति आदर-भाव रखते हुए भी उन्होंने अपने देश और धर्म को हीन मानने से दृढ़तापूर्वक इंकार किया। गदर के बाद बाबू का व्यापक प्रसार होने के साथ ही साथ हम यह भी देखते हैं कि इस देश में सामाजिक सुधार आंदोलनों का जन्म हुआ। वेद, उपनिषद् और गीता ने इस बाबू वर्ग की आध्यात्मिक ही नहीं राष्ट्रीय भावना को भी बड़ा बल दिया, और इसी बल के साथ उन्होंने मूर्ति-पूजा और रूढ़ियों के खिलाफ जेहाद भी ठाना। बंगाल के ब्रह्म समाज, बम्बई के प्रार्थना

समाज और उत्तर भारत के आर्यसमाज के रूप में यह सुधारवादी आन्दोलन बवंडर की तरह उठा और देशव्यापी हुआ। सनातन धर्मावलम्बियों के लिए ये ब्रह्मचारी आर्य बाबू भी उतने ही बुरे थे जितने कि अंग्रेज़ी चालढाल वाले साहब बाबू।

ये ब्रह्मवादी आर्य बाबू सभा-सोसाइटियां बनाते, पुरानी जातीय पंचायतों के विरुद्ध नये जातीय क्लब बनाते, जातीय 'समाज' स्थापित करते, जातीय समस्याओं के सुधारवादी हल लेकर अखबार प्रकाशित करते, बाल-विवाह के विरुद्ध और विधवा-विवाह के पक्ष में लेक्चर देते और लेख लिखते, पंडों-पुरोहितों की भरपेट खिल्ली उड़ाते तथा विलायत-गमन के सिद्धान्त का ज़ोरदार समर्थन करते थे।

बात यदि यहीं तक सीमित रहती तो रूढ़ियों के प्रति निष्ठावान सनातनधर्मी वर्ग इन लोगों को भी धर्मभ्रष्ट म्लेच्छ क्रिस्तान मानकर उपेक्षापूर्वक मुंह फेर लेता, परन्तु ये आर्य बाबूगण साहब बाबुओं के समान चरित्रहीन और पतित नहीं थे—वरन ये लोग वेद मंत्रोच्चार और यज्ञ-होमादि भी करते थे। ब्रह्मसमाजियों, आर्यसमाजियों से उन दिनों सनातनधर्मी लोग सौतों की तरह झोटमझोट जूझे हैं। सनातनधर्मी पण्डितों के लिए सबसे बुरी बात तो यह हुई थी कि जिन वेद-शास्त्रों की धमकी देकर वे अपने समाज पर स्वेच्छानुसार अंकुश रखते थे वे वेद आर्य-समाजियों ने जन-साधारण के लिए सुलभ कर दिए। जाति-भेद का ध्यान भी कम रखा। उत्तर भारत में आर्यसमाज एक ऐसे बवंडर की तरह आया जिसे सनातनधर्मी रोक न पाते थे। आर्यसमाजी अपने धर्म की बुराइयों के अलावा चूंकि मुसलमान मुल्लाओं और ईसाई पादरियों से भी लोहा लेते थे, इसलिए वे हिन्दू समाज को बहुत भाते थे। सनातन-धर्मी पण्डितों को अपने इन शत्रुओं से करारा झटका लग रहा था।

कानपुर की घटना है, एक बार सनातनी ब्राह्मणों के उकसाने से कुछ सनातनी सेठ भी धर्ममूर्ति धर्मावतार का पद पाने के हेतु चन्दा देकर आर्यसमाजियों के खिलाफ सनातन धर्म की सभा करने के लिए कटिबद्ध हुए। तय हुआ कि जिस तरह आर्यसमाजी बात-बात में वेद का हवाला देकर वेद-मंत्रों का अनर्थ करते हैं, उसी प्रकार सनातनी पण्डित भी बात-

बात में मंत्रों का हवाला दें और उनके सही अर्थ बतलाएं। कानपुर-भर के पण्डितों के यहां ढुंढैया मची, किसीके घर वेद ही न मिला।

आर्यसमाजी विद्वानों में ऐसे अनेक विचित्र लोग भी थे जो हर पश्चिमी वैज्ञानिक आविष्कार को वेद से खोज निकालते थे। गैस, बिजली, रेल, तार, भाप सब कुछ वेदों से निकल आता था। पश्चिमी भौतिक विज्ञान के नित्य नये-नये आविष्कारों और यूरोपीय जातियों की उच्चता से प्रभावित स्वदेशवासियों को आर्यसमाजियों के वेदों ने हीन भावना में फंसने से काफी हद तक बचाया। मैंने अपने देश के बुड्ढों से बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक बातें सुनी हैं। सुना है कि हमारे ऋषि-मुनि तांबे की पटरियों पर रेल चलाते थे, सोने और जवाहरात का प्रयोग कर ऐसी तरकीब से दीपक बनाते थे जो गैस (बाद में बिजली भी) की रोशनी से सौ गुना ज़्यादा प्रकाशवान होते थे। मेरी अपनी धारणा तो यह है कि यदि आर्य-समाज का आन्दोलन न चला होता और उसके वकील अनेक विचित्र विद्वानों ने यदि वेदों को विज्ञान की खान न सिद्ध किया होता तो बाबू देवकीनन्दन खत्री अपने अमर तिलस्मी उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' की कल्पना न कर पाते।

अखबार क्रान्ति

प्रेस और अखबारों ने समाज-सुधार आन्दोलन, नागरी प्रचार आन्दोलन एवं राजनैतिक आन्दोलन को बढ़ाने में बहुत बड़ा हाथ बंटाया। छापे के अक्षर पढ़े-लिखे समाज के लिए विधाता के लेख की भांति अटल और विश्वसनीय हो गए। पुराने बुज़ुर्ग, जो हर नई चीज़ का विरोध करते थे, अखबार का भी विरोध करते थे। परन्तु इस विरोध के साथ एक आश्चर्यजनक बात मैंने एक नहीं अनेक बुजुर्गों से सुनी है—कई बड़े-बूढ़ों का यह ख्याल है कि जब से अखबार चले तब से महंगाई बढ़ गई।

मिट्टी का तेल और नल क्रान्ति

आर्यसमाज और अखबारों की छत्र-छाया में बाल-विवाह भले ही न रुके हों अथवा विधवा-विवाह भले ही न हुए हों, परन्तु छोटी-मोटी

क्रान्तियां अवश्य हुईं। उनमें अंग्रेज़ी दवाओं, मिट्टी के तेल और पानी के नल का उपयोग बहुत ही मार्के की हैं। बंगाली डाक्टर आने लगे। बाबू घरों में स्वाभाविक रूप से रोग केवल अंग्रेज़ी दवाइयों से ही अच्छे हो सकते थे, वैद्य-हकीम उनकी दृष्टि में दहकानी-दकियानूस हो गए थे। हिन्दू बाबू घरों में अंग्रेज़ी दवा का उपयोग बड़ी ही मुश्किलों से आरम्भ हो पाया क्योंकि यह धारणा फैली हुई थी कि कोई भी अंग्रेज़ी दवा बगैर ब्रांडी और बकरे-मुर्गों के सत के बन ही नहीं सकती। शुरू-शुरू में लोग इस धारणा के खिलाफ यह प्रचार करते थे कि यह बात गलत है, अंग्रेज़ी दवाइयां पाउडरों से तैयार होती हैं और पानी में घोली जाती हैं। लखनऊ के एक दवाफरोश ने, जिनकी दूकान शहर में सबसे पहले खुली, यहां तक प्रचार किया था कि उनकी दवाइयां नल के पानी में भी नहीं बनती हैं, बल्कि रोज़ उनके यहां ठेले पर लदकर कई कलसे गोमती नदी का पानी आता था और वह कलसों-भरा ठेला विज्ञापन के रूप में सदा उनकी दूकान के सामने खड़ा रहता था। लोग-बाग ठाकुर जी को भोग लगाकर अंग्रेज़ी दवा ग्रहण करते थे।

न जाने किस तर्क के आधार पर मिट्टी का तेल जूठन की वस्तुओं में शामिल कर लिया गया था। लोगबाग पहले उसे अपने घर की ड्योढ़ी में ही जलाते थे मगर जर्मनी की डीज़ल लालटेनें मिट्टी के तेल को घरों के अंदर ले ही गईं। इसी तरह नल के पानी के सम्बन्ध में भी अनेक भ्रान्त धारणाएं फैली थीं। कहा जाता था कि अंग्रेज़ जिस पानी से नहाते और कुल्ला करते हैं उसीको नलों द्वारा घरों में प्रवाहित कर देते हैं; नल भारतीयों को धर्मच्युत करने की एक चाल है, उसमें चमड़े का वाशर लगता है। हमारे नगर के पहले प्लम्बर एक बंगाली बाबू घर जाकर नल लगवाने के लिए अपील करते थे। उनके अनेक तर्कों में एक यह भी था कि जिन परम पावन नदियों में स्नान करना हिन्दू अपना परम धर्म समझते हैं, उन्हींका जल उन्हें आठों याम सुलभ होगा। फिर भी आरम्भ में अनेक वर्षों तक नलों का पानी केवल धोने-धाने के काम ही लाया गया। पीने और नहाने के लिए उसका व्यवहार न हो सका।

विलायत-गमन क्रान्ति

भक्तो ! विलायत-गमन क्रान्ति का वर्णन कर पुराणकार आगे भी बाबू की बहुत-सी लीलाएं बखानेगा । परन्तु भक्तो ! आज की पुराणवार्ता यहीं पर समाप्त होती है क्योंकि बाबू वक्ता, बाबू श्रोता ठाले की वाहवाह को छोड़कर और पुजापा न चढ़ेगा । सो कलिकाल के पुराणकार जब पेट-पूजा से निस्तरेंगे तब आगे की कथा कहेंगे ।

९

तीतर, बटेर और बुलबुल लड़ाना

यह मुमकिन है कि शान्ति के कबूतर उड़ाते-उड़ाते हम एटम हाइड्रोजन मिज़ाइल किस्म के भयानक हथियारों और आस्मानी दर आस्मानी करिश्मों के औज़ारों की लड़ाई बन्द कराने में सफल हो जाएं, मगर यह कि लड़ाई का चलन ही दुनिया से उठ जाएगा, हम न मानेंगे जनाब! अजी, लड़ाई का मज़ा चार जवान नज़रों से पूछिए, नवोढ़ा प्रौढ़ा सुहागिनों के मानभरे मुंहफुलावन से पूछिए, सितार और मिज़राब से पूछिए, घुंघरुओं और इन्सान के पैरों से पूछिए, इल्मोहुनर की लागडांट करने वालों से पूछिए, एलेक्शन लड़ाने वालों से, वकील-बैरिस्टरों की ज़बानों से, पार्टीबाज़ों की तूतू-मैंमैं से पूछ देखिए—कोई भी न चाहेगा कि लड़ाई का चलन उठा दिया जाए। सच पूछिए तो लड़ाई का दूसरा नाम ही जीवन का विकास है; ग्रह-उपग्रहों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान के बावजूद इन्सान लड़ने से बाज़ न आएगा। जब तक दाल-तरकारी में नमक की ज़रूरत रहेगी तब तक सभ्यता का हाज़मा दुरुस्त रखने के लिए हम गालियों का इस्तेमाल भी करते रहेंगे, जब विटामिन की टिकियों से पेट भरने लगेगा तब भी ताने देने की बात तो मेरे खयाल से न छूटेगी। मतलब यह कि विश्वशान्ति, ब्रह्माण्ड शान्ति आदि ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः का साम्राज्य दसों दिशाओं में फैल जाए, फिर भी ज्ञान-विज्ञान की ऊंची-ऊंची चोटियों पर चढ़ने के लिए मनुष्य निरन्तर लड़ता ही रहेगा।

प्रकृति के बच्चों में सिर्फ आदमी ही लड़ता हो सो बात नहीं, छोटे-बड़े चेरिन्दे-परिन्दे भी कटाजुज्झ करते ही रहते हैं। इनकी लड़ाइयों में मानवी सभ्यता ने सदियों तक लुत्फ हासिल किया है। पुराने ज़माने में ही नागर सभ्यता ने जानवरों की लड़ाइयों को कला और शास्त्रविद्या तक

पहुंचा दिया था। वात्स्यायन के कामसूत्र में लिखा है कि जानवरों की लड़ाई देखना रसिया रईसों के लिए टॉनिक का काम करता है। इसलिए पुराने दिनों के सम्राट बादशाह जानवरों की लड़ाइयां बड़े शौक से देखा करते थे। हमारे नगर, लखनऊ, में भी नवाबी बादशाही ज़माने से इसके संस्कार चले आते हैं। नसीरुद्दीन हैदर को पशु-पक्षी के युद्धों का बड़ा चाव था। चांदगंज में पशुशाला थी, हाथी, ऊंट, गैंडे, चीते, सांड़, भैंसों से लेकर तीतर, बटेर, मुर्ग, बुलबुल आदि तक की लड़ाइयां उसका मनोरंजन करती थीं। एक ज़माना था जब यहां बटेरों और तवायफों की बादशाही थी।

खैर, इस समय तो बुलबुल, बटेरों और तीतरों का तज़किरा छिड़ा है। इनकी लड़ाइयां भी खूब-खूब होती हैं, चोंचें चलती हैं, ये परिन्दे आपस में एक-दूसरे पर झपट-झपटकर वार करते हैं, चारों तरफ इंसान तमाशाइयों की भीड़ खड़ी होकर इनका हौसला बढ़ाती है, "और ले बेटे! काट ले और काट ले! हुमक के! जियो बेटे, वाह वाह!" का समा बंध जाता है। इनकी हार-जीत पर सैकड़ों-हज़ारों का सट्टा हो जाता है। गरज़ यह कि इन पंछियों की लड़ाइयों का भाव रुपये, आने, पाई से अब तक बंधा है। इसीलिए लड़ाकू परिन्दों की खूराक और देख-सम्भाल में उनके पालने वाले दिल खोलकर खर्च करते हैं। इनके उस्ताद और खलीफा होते हैं, दंगल उस्तादों के नाम से होते हैं; इनकी हारी-बीमारी, चोट-चपेट के लिए दवाएं हैं, शक्तिदाता जड़ी-बूटियां हैं, पालने और लड़ाने के नियम हैं, पोथियां हैं—यानी कि वह सब टीमटाम है जो मनुष्य के शौक और सट्टे के सिद्धांतों का समन्वय करती है।

वैसे हमें न तो सट्टे का शौक है और न जानवर पालने का। सच पूछिए तो हमारी ऐसी हैसियत ही नहीं। हम आमतौर पर उन्हीं जानवरों की लड़ाइयां देख पाते हैं जो हमारे-आपके घरों में बरबस बस जाते हैं, मसलन चींटी, चूहे, मक्खी, मच्छर, खटमल वगैरह। दाना ले जाती हुई एक चींटी से दूसरी चींटी की रस्साकशी, चूहों की चूं-चूं और उछल-कूद-मार, मच्छरों का भन्ना-भन्नाकर एक-दूसरे पर वार करना अपना एक अन्दाज़ तो रखता ही है; मगर इनका चर्चा बेकार है क्योंकि इनकी

लड़ाइयों पर सट्टा नहीं होता ।

भगवान भला करे हमारे पुराने प्रालितेरियन पड़ोसी कादिर भाई का, जिनकी बदौलत तीतर, बटेर और बुलबुलों के दंगल हमें देखने को अवसर मिल जाते हैं। उनकी दुकान के सामने फुटपाथ पर कोई मौसम नहीं जाता जबकि एक न एक दंगल न होता हो। खयालगोई के दंगल, तीतर, बटेर, बुलबुल, मुर्ग और अगिन चिड़िया के दंगल, बारहमासियों के दंगल—कुछ न कुछ होता ही रहता है । चलती सड़क से जन-जनार्दन सिमटकर जब भी 'वाह-वाह' और 'लपक के बेटे' का आकाशफोड़ शोर मचाते हैं तो हम सारे 'इज़्मों' से पगहिया तुड़ाकर अपने छज्जे पर खड़े हो इनका तमाशा देखने से चूक नहीं सकते। अहिंसा के सिद्धांत को मानते हुए भी इन लड़ाइयों के मज़े से हम इनकार नहीं कर सकते ।

तो आइए, पहले बटेरों पर ही बातचीत हो जाए। यह मैं निवेदन कर चुका हूं कि नवाबी लखनऊ में बटेरों की बादशाहत थी। पण्डित रतन-नाथ दर 'सरशार' अपनी 'आज़ाद कथा' में सफशिकन के बहाने लखनऊ के बटेर को अमर कर गए हैं ।

वैसे इन पंछियों की लड़ाई का मौसम कातिक गंगानहान से लेकर फागुन तक होता है, मगर बटेर गर्मी और सर्दी दोनों ही ऋतुओं में लड़ते हैं। दोनों ऋतुओं में बटेरों की जातियां भी अलग-अलग होती हैं। गर्मी में 'चिनख' बटेर लड़ता है और जाड़ों में 'घाघर'। चिनख घाघर से छोटा होता है और वज़न में छटांक-डेढ़ छटांक का होता है । चिनख की चार किस्में होती हैं; चिनख पोटिया, घाघर पोटिया, असल चिनख और कलपोटिया। घाघर पोटिया चिनख और घाघर की संकर जाति है। ये चारों किस्म के बटेर गर्मी के मौसम में ही मस्ताते हैं।

सर्दी में घाघर लड़ाया जाता है। यह चिनख से बड़ा और तोल में आध पाव-ढाई छटांक तक का होता है। इसकी दो किस्में होती हैं, असल घाघर और चिनख घाघर की संकर जाति घाघर पोटिया ।

लड़ाकू बटेरों की परवरिश में बड़ी लागत लगाई जाती है। काकुन तो ये चुगते ही हैं, लड़ाने की तैयारी में इन्हें मेवे, केसर, मुश्क और जड़ी-बूटियां भी खिलाई जाती हैं।

इनकी काबुकों में चूल्हे की राख या छनी हुई बारीक मिट्टी बिछा दी जाती है, जिसमें लोट-लोटकर ये अपनी मस्ती बढ़ाते हैं। इन्हें नहलाया जाता है, आवश्यकतानुसार धूप-छांह भी दी जाती है। चैत में इनके बच्चे पैदा होते हैं; वे चैतुवे कहलाते हैं। साल दो साल पुराने पोढ़े बटेर कुरीज कहलाते हैं, जो बाकी चालू फसल में लिए जाते हैं वे 'नये' कहलाते हैं। ये तीनों आपस में लड़ाए जाते हैं। घर में लड़-लड़कर पोढ़े होते हैं; जो बहादुर निकलते हैं वे दंगलों में भेजे जाते हैं। लड़वैए बटेरों की चोंचें उस्तरे से बारीक बनाई जाती हैं ताकि उम्दा मार कर सकें।

बटेरों की लड़ाई देखने में बड़ी सनसनीखेज़ होती है। ये नन्हा बूटेदार कत्थई या काले रंग का पहाड़ी जानवर अपने प्रतिद्वन्द्वी को देख पर फुलाते और बड़ी शान से पैंतरे बदलते हुए अचानक उछलकर वार करता है, कभी खींच मारता है, कभी मुर्री लगाता है, कभी फाड़ता है तो कभी दुश्मन की आंखों में चोंच मारता है या उसकी चोंच तोड़ता है। लड़ते-लड़ते बटेर लहूलुहान हो जाते हैं, जितना लड़ते हैं उतना गरमाते हैं। हरैला बटेर जीतने वाले से अपनी जान छुड़ाकर सीधा नोकदम पाली बाहर भागता है, वरना जीतने वाला उसकी जान न छोड़े।

अब तीतरों की बात सुनिए। टीले-मैदानों में तीतर चुगाते, खाली पिंजरा लिये 'लियो बेटे हुईं-हुईं' की हांक मारते तीतर-प्रेमीजन गली-मुहल्लों और गांव-खेड़ों में आपने अक्सर देखे होंगे। तीतर बड़ा मस्त और ताकतवर जानवर होता है। यह चैत में पैदा होता है और सर्दी में मस्त होकर लड़ता है। लड़वैये तीतरों की खूराक भी बटेरों की तरह कीमती होती है। वैसे इसे मिट्टी, आटा और दीमक भी चुगाया जाता है। पालने वाले अपने घरों में इनके लिए एक नलची-सी बनाकर उसमें बारीक मिट्टी भर देते हैं ताकि ये खूब लोटें-पोटें। गर्मी में पानी से तर बालू भर देते हैं। इनकी चार जातियां होती हैं और चार किस्में। ये देसी, गंगापारी, दक्खिनी और दोगली जातियों के होते हैं। रंगभेद के अनुसार ये भूरिया, मेहंदिया, करौंदिया और काले कहलाते हैं। इनकी लड़ाई के दांव-पेच भी देखने के काबिल होते हैं। ये अपने दुश्मन की आंख काटते हैं, चोंच में चोंच डालकर ज़बान काटते हैं, जिसे

'कुफल मारना' कहा जाता है, दुश्मन की खोपड़ी में चोंच मारने को 'डंक मारना' कहते हैं, एक ही स्थल पर बराबर आघात किए जाने का टेक्निकल नाम 'एक ठौर मारना' है और चंचल गति से दुश्मन के शरीर के हर भाग पर आघात करने को 'फड़कमार' कहते हैं।

अब दास्ताने बुलबुल सुनिए। सर्दी में पीतल के अड्डों पर बुलबुल लिये इनके शौकीन भी आपको अक्सर देखने को मिल जाएंगे। इनकी चार किस्में होती हैं, सफेद, काला, काला-सफेद, और तीखी। अमरूदों के बाग में अक्सर ये पाए जाते हैं। इनका भोजन अधिक कीमती नहीं होता। भुने हुए चने का बेसन इन्हें खिलाया जाता है। जब लड़ना होता है तो दस-बारह घंटे पहले से इन्हें भूखा रक्खा जाता है। प्रतिद्वन्द्वी को देखते ही ये भूखे बुलबुल एक-दूसरे पर झपट पड़ते हैं, एक पंजे से चोंच और दूसरे से पंजा पकड़कर ये गुंथ जाते हैं। जो ताकतवर होता है वह कमज़ोर को दबाकर पड़ जाता है और कमज़ोर उसके पंजे से छूटने के लिए जी-जान से प्रयत्न करता है।

इनकी परिचर्या भी बड़ी सावधानी से होती है। अड्डे पर लिये-लिये इन्हें बराबर घर-बाहर घुमाया और उड़ाया जाता है। इन्हें दंगलों में लड़ाने के लिए यह आवश्यक होता है कि एक ही जगह रखकर लड़ाने की प्रैक्टिस न की जाए, वरना ये दूसरी जगह न लड़ेंगे। हारा हुआ बुलबुल मुंह घुमाकर बैठ जाता है, विजयी से नज़रें नहीं मिलाता।

इस तरह तरह-तरह के शौक हैं, शौकों के पीछे आदमी तबाह है और तबाही में लड़ाई की बात तो आ ही जाती है।

अतिशय अहम् में

बात कुछ भी नहीं पर बात है अहम् की। आज से करीब पचास व साठ बरस पहले तक अहम् पर खुद्दारी दिखलाना बड़ी शान का काम समझा जाता था। रईस लोग आमतौर पर किसीके घर आया-जाया नहीं करते थे। बराबरी वालों के यहां भी बड़े नाज़ और नखरों से जाते थे। एक रईस महोदय का यह कायदा था कि अपनी बिरादरी में अगर कहीं मौत हो जाती तो स्वयं मुर्दनी में सम्मिलित होने के लिए न जाकर अपने खास नौकर के द्वारा अपने जूते भिजवा दिया करते थे। बिरादरी वालों को रईस महोदय का यह अहंकार बहुत खलता था। खैर, उन्होंने बदला भी ले लिया। रईस महोदय की बुढ़िया मां मरी, बड़ी धूमधाम से उसका विमान निकालने की तैयारियां होने लगीं। सेठ जी के लगुए-भगुए तो सब पहुंच गए पर बिरादरी वाले न गए—एक नौकर के द्वारा बिरादरी-भर के फटे जूतों का गट्ठर उनके घर पर भिजवा दिया गया। व्यक्ति के अहम् पर समाज के अहम् का बोझ पड़ गया, सेर को सवा मिल गया, घमंडी का सिर नीचा हो गया।

व्यक्तिगत रोब के सैकड़ों दृष्टान्त पुराने वक्त से निकालकर दिए जा सकते हैं। अंग्रेज हाकिम अपने कमरे में एक भी फालतू कुरसी नहीं रखता था। बड़े-बड़ों को वह अपने सामने खड़ा ही रखता था। नवाबी ज़माने में एक ब्राह्मण देवता थे। पढ़े-लिखे तो थे नहीं, हां, गुंडों में सरनाम थे। लखनऊ के एक बड़े प्रसिद्ध महाजन साहजी साहब गंगाजमनी तामजाम पर बैठे चले जा रहे थे। चार बन्दूकधारी सिपाही आगे, चार पीछे और हटो-बचो की पुकार होती चल रही थी। बाज़ार में लोग झुक-झुककर साहजी साहब को सलाम कर रहे थे। संयोग की बात है कि साहजी साहब को अपनी मूंछों पर एकाएक हाथ फेरने की तबियत आ गई। उधर बांके

महाराज की यह आन थी कि उनके सामने कोई मूंछों पर ताव नहीं दे सकता था। जो ऐसा करता वह गोली का निशाना बनता। बांके महाराज को साहजी की कोठी से अक्सर दान-दक्षिणा भी मिला करती थी इसलिए साहजी साहब को गोली मारने के बजाय उन्होंने उनके तामजाम पर बने हुए शेर पर गोली दाग दी और बोले "अबकी छोड़ दिया सावजी ! मगर खबरदार, आगे से कभी मेरे सामने अपनी मूंछों पर ताव न देना।"

मामला चूंकि साहजी का था इसलिए बादशाह तक खबर पहुंची और गुंडे ब्राह्मण देवता की मुश्कें कस गईं और बादशाह की ओर से उन्हें फांसी का हुक्म हो गया। लेकिन साहजी साहब आज के ज़माने के अतिशय अहम्‌वादी न थे। मौका-महल देखकर ही वे अपना रोब दिखलाते थे। इसलिए बादशाह के पास जाकर बोले, "जहांपनाह, मेरी बेबसी पर तरस खाइए। अगर हुज़ूर के हुक्म के खिलाफ कुछ कहता हूं तो मेरी गरदन जाती है और अगर चुप रहता हूं तो मेरी वजह से एक ब्राह्मण की जान जाती है और उससे मेरा लोक-परलोक बिगड़ता है।" बादशाह ने साहजी साहब की बात मान ली और घमंडी बांके को छोड़ दिया।

अतिशय अहम् में ऐसे तमाशे अक्सर हुआ करते हैं। दरअस्ल, देखा जाए तो बात कुछ नहीं होती महज एक-दूसरे के ज़ोम में एक-दूसरे को पीसने की प्रवृत्ति ही जोम के खेल दिखलाया करती है। आपने उस मेढक का किस्सा अवश्य सुना होगा जिसके बच्चे ने पहली बार बैल देखा और घबराकर अपने पिता से कहा कि मैंने आज आप से भी बड़ी हस्ती देखी, अपने अतिशय अहम् में मेढक पेट फुलाकर मर गया, पर अपने बच्चे की नज़रों में बैल न बन पाया।

मेढकों की बात जब चल ही पड़ी है तब मुझे उनका टर्र-टर्र स्वर भी अतिशय अहम् के प्रतीक के रूप में याद आने लगा है। मेढकों की टर्र-टर्र पर तनिक ध्यान दीजिए।

मेढकों की यह टर्र-टर्र बाबा तुलसीदास जी को बड़ी सुहावनी लगी थी, लिहाज़ा लिख गए कि—"दादुर धुनि चहुं दिसा सुहाई" और यहीं तक नहीं, अपनी उदारता में स्पेस दर स्पेस से लांघते-फलांगते हुए उन्होंने मेढकों के टर्राने में वेद पढ़ते हुए लड़कों की टोली तक देख ली। खैर

साहब, गुसाईं जी महाराज तो संत-महात्मा थे लेकिन अपने राम वैसे शरीफ नहीं हैं, हमने जब मेढकों का टर्राना देखा-सुना है तब हमारे मन की स्क्रीन पर दो चित्र नाच उठे हैं, एक तो चारों खाने चित्त हाथ-पैर बांधे बड़े टर्रे खां मेढकराज हमें मेडिकल कालेज के किसी छात्र या छात्रा के चाकू के नीचे नज़र आने लगते हैं और दूसरे कभी-कभी मेढकों की टर्र-टर्र में हमें हिन्दुस्तानी बाबुओं की अंग्रेज़ी बोली वाली लड़ाई का दृश्य नज़र पड़ जाता है।

एक किस्सा सुनाऊं। रेल में कम्पार्टमेंट में नई सवारी के प्रवेश करने पर झों-झों तकरार, गाली-गुफ्ता और कभी-कभी तो हाथापाई के दृश्य भी उन सभी ने देखे होंगे जो थर्ड क्लास में यात्रा करते हैं। कभी-कभी भीड़ अधिक होने पर सेकेन्ड क्लास कम्पार्टमेंट के यात्री भी यही दृश्य उपस्थित करते हैं। खैर, तो हम एक बार थर्ड में यात्रा कर रहे थे। भीड़ खासी थी। अपनी दरी-चादर बिछाकर सीट 'रिज़र्व' करने वाले छोकरे से एक बाबू साहब ने थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट में ऊपर की सीट अपने लिए रुकवाई थी। छोटा-सा दरवाज़ा, भीड़ खासी, हमलोग भी दूसरों के बक्स-बिस्तरों पर किसी प्रकार टिके हुए थे। लगभग तीस-पैंतीस बरस के एक दुबले-पतले चश्मा, चोटी, चन्दन, कमीज़-पतलूनधारी एक बाबू साहब भी हमारे पास ही किसी कनस्टर का सहारा लेकर कुछ-कुछ खड़ेनुमा बैठे थे। उन्होंने बराबर अंग्रेज़ी में ही हमसे बातें कीं और हम बराबर अपनी ही बोली बोलते रहे।···तो वो बाबू साहब ने दरी बिछाकर लेटे हुए गैरकानूनी तौर से सीट रिज़र्वेशन करने वाले छोकरे को देखकर धीरे से मेरे कान के पास आकर कहा—

बाबू—यू सी मिस्टर, ही इज़ नाट ए रिएल ट्रैवलर। (देखिए, यह असली यात्री नहीं है।)

मैंने कहा—आपने ये कैसे जाना ?

बाबू—आइ हैव सीन हिज़ फेस सम टाइम्स बिफोर आल्सो। यू सी ह्वाट ही डज़ ? ही बिलांग्स टु दैट गेंग आफ छोकराज़ हू रिज़र्व दी अपर सीट्स फार यू लाइक दिस। (मैंने पहले भी इसे देखा है। जानते हैं, वह करता क्या है ? यह छोकरों के उस दल का सदस्य है जो इस प्रकार दूसरों

के लिए सीटें रिज़र्व करते हैं।)

मैंने कहा—जान पड़ता है कि आपने भी कभी इस छोकरे से अपने लिए इसी प्रकार सीट रिज़र्व करवाई थी।

बाबू—यस, यस मेनी ए टाइम्स बिफोर। यू सी आइ एम दी पी० ए० एक्स वाई जेड आफ दी सी सेक्शन बी—फ्लोरबार्थ सेक्टर इन एनीमल हज़बैंड्री, सो आइ हैव टु ट्रेवल। बट दिस इज़ ए बैड प्रैक्टिस, दिस काइंड आफ सीट प्रीज़रवेशन। चीटिंग दी पब्लिक ऐंड गवर्नमेंट बोथ। यू एग्री मिस्टर। (हां, पहले कई दफा कराई है। मैं एनीमल हसबैंड्री के फ्लोरबार्थ सेक्टर में सेक्शन बी के एक्स वाई जेड का पी० ए० हूं, इसलिए मुझे अक्सर सफर करना पड़ता है। लेकिन इस तरह सीट लेना बुरी बात है। यह जनता और सरकार दोनों को धोखा देना है।)

मैंने कहा—जी हां, गलत तो है, लेकिन ये कालाबाज़ारी नीचे से लेकर ऊपर तक फैली हुई है। क्या किया जाए। खुद आप ही इन्हें बढ़ावा देते हैं।

बाबू—नो बट दिस टाइम आइ विल टीच हिम ए लेसन। इन दी मीनटाइम यू प्लीज़ टेक केयर आफ माई होल्डआल। (लेकिन इस दफा मैं उसे सबक सिखाऊंगा। आप सिर्फ मेरे होल्ड-आल पर नज़र रखिए।)

ये कहके बाबू साहब ने अपना टीन का संदूक उठाया और खड़े-बैठे लोगों की भीड़ चीरते हुए सीट के सिरहाने तक पहुंच गए। संदूक ऊपर चढ़ाया। वह छोकरा बोला "क्या करते हैं साहब, ये सीट रिज़र्व है।"

"अबे, तेरे बाप ने रिज़र्व कराई है यह सीट?"

"देखिए, बाप-दादा तक न पहुंचिए, अच्छी बात न होगी।"

"अच्छा-अच्छा, टिकट निकालकर दिखाइए अपना, पीछे बात कीजिएगा।"

छोकरा बोला—"आप टिकस पूछने वाले कौन होते हैं? बुलाइए टिकट-बाबू को, अभी दिखा दूंगा।"

छोकरा तैश में आकर उठ बैठा, बाबू साहब ने तुरन्त अपना संदूक सिरहाने पर रख दिया।

वैसे ही एक दूसरे बाबू साहब ने प्रवेश किया। छोकरा उन्हें देखते

ही "इधर है साब, आपकी सीट पर दूसरा साब जमा जात है साब" करके नीचे उतरा। दूसरे बाबू साहब ने, जो देखाव में अधिक रोबीले थे, एक बार अपनी सीट पर नज़र डाली और कुली को आवाज़ देने लगे। छोकरा बोला कि साब, पैसे दीजिए। बाबू साहब ने रुपया दिया और ज्योंही उसने अपनी दरी उठाई, त्योंही पहले बाबू ने झपटकर अपना होल्डाल सीट पर फेंक दिया और आगे बढ़कर जल्दी-जल्दी उसे खोलने लगे। दूसरे बाबू तैश खा गए, बोले—"ये क्या करते हैं आप ? सीट मेरी है।"

बाबू—"हूसोएवर अक्यूपाइज़ दी सीट फर्स्ट···।" (जो भी पहले सीट घेर ले···)

नया बाबू—"बट आइ हैव पेड फार इट।" (मैंने सबके सामने रुपया दिया है।)

पहले बाबू ने पूछा कि क्या आपने सरकार से सीट रिज़र्व कराई है, और यह कहते हुए तेज़ी से अपने होल्डाल के तस्मे खोलते रहे। दूसरे बाबू साहब का सामान सर पर लादे हुए कुली खड़ा हुआ था जो और सामान रखवाने के लिए जल्दी मचा रहा था। बाबू साहब ने उसी सीट पर अपना सामान रखने के लिए कुली को आदेश दिया। पहले बाबू लपककर ऊपर चढ़ने लगे। दूसरे बाबू ने भी लपककर बाबू की टांग पकड़ी और दोनों बाबू अंग्रेज़ी में लड़ने लगे।

"यू कान्ट अक्यूपाई दैट सीट।" (आप यह सीट नहीं ले सकते।)

"आई शैल श्योरली सिट हियर। आई हैव एन्ट्री राइट।" (मैं तो यहीं बैठूंगा। मुझे पूरा हक है।)

"डू यू नो हू आई एम ?" (आप जानते हैं, मैं कौन हूं ?)

"ऐन्ड डू यू नो हू आई एम ?" (और आप जानते हैं मैं कौन हूं ?)

लीजिए ! ये ज़ोम की तनातनी बढ़ चली। दूसरे बाबू ने पहले बाबू की टांग घसीटकर गिरा दिया और फिर हाथापाई होने लगी। कम्पार्टमेंट में हंगामा मचा, पुलिस आई और दोनों को पकड़ ले गई। बात कुछ भी नहीं थी मगर अतिशय अहम् के ज़ोम में दो बाबुओं की बात यों बिगड़ गई। टर्रे मेढक मानो मेडिकल विद्यार्थी की छुरी के नीचे आ गए।

१८

मेरे आदिगुरु

पुराने भारतीय गुरुओं के सम्बन्ध में बहुतों ने बहुत कुछ जो सुन रक्खा होगा उसका एक रूप बीसवीं सदी में रहते हुए भी हमने आंखों देखा है। बचपन में जो पण्डित जी हमको पढ़ाते थे, वे प्राचीन ऋषि गुरुओं की आत्मा और वेशभूषा न रखते हुए भी किसी हद तक उनसे मिलते-जुलते हुए अवश्य थे। मसलन मार्च के महीने में तीसरे पहर यदि आप कभी उनके यहां पहुंचे होते तो हममें से किन्हीं दो छात्रों को आप ज्योमेट्री का थ्योरम ज़ोर-ज़ोर से सुनाते हुए, पण्डित जी की दो गायों की सानी करते हुए पाते। कोई लड़का आपको बाबर के बाप हुमायूं का माहात्म्य बखानता हुआ पण्डित जी के आंगन के साथ-साथ इतिहास को बटोरता हुआ भी मिल जाता। तीन-चार बजे का समय दरअस्ल पण्डित जी की भांग घोटने का समय हुआ करता था। वे अपने नवाबी ज़माने के बने हुए मकान की पौली में चबूतरे पर दत्तचित्त हो सिलौटी पर विजया सिद्ध किया करते थे। जब तक भांग पीसते-पीसते सिल न उठ आए तब तक पण्डित जी अपने आसन से उठते न थे। इस कार्यक्रम में लगभग डेढ़ घण्टा लगता था। उतने समय में पण्डित जी विद्यार्थियों से सानी-पानी, झाड़-बुहारू आदि काम करवाया करते थे। परन्तु इन कामों को करते हुए भी लड़कों का अपनी पढ़ाई जारी रखना नितान्त आवश्यक था। पण्डित जी किसीकी एक पाई भी मुफ्त में खाना हराम समझते थे। पौली में बैठकर भांग घोटने के कारण चूंकि पण्डित जी और उनके विद्यार्थियों के बीच में दीवाल की आड़ होती थी, इसलिए उनका आदेश था कि सब लोग ज़ोर-ज़ोर से अपना पाठ याद करें जिससे कि उन्हें सुनाई पड़ता रहे। नतीजा यह होता था कि सरस्वती की मानसमुक्ता चुनने वाले हंस मिल-कर कौवा-शोर मचा देते थे। ज्योमेट्री की थ्योरमें, इतिहास की कथाएं,

भूगोल की कर्क, मकर और विषुवत् रेखाएं, हिन्दी में चरित्र गठन के महत्त्व के साथ लिपट-उलझकर सब्ज़ी-मण्डी के कबाड़ियों की तरह अद्भुत स्वर वैचित्र्य उपस्थित किया करती थीं। इस रटाई के कार्यक्रम में हमें खरा आनन्द आता था। अदब से बैठने की ज़रूरत न होती थी। क्योंकि पण्डित जी सामने न होते थे। उठ-उठकर एक-दूसरे को टीपें लगाना, मुंह चिढ़ाना, चोंच दिखाना आदि मनोरंजक कार्यक्रम करते हुए हम चौबीस घंटों में केवल उतना ही समय अपना मानकर सुख से बिताया करते थे, क्योंकि मार्च का महीना होता था। हमारी सुबह स्कूल की, और दिन के एक बजे से लेकर रात के नौ बजे तक का समय पण्डित जी का हुआ करता था। सालाना इम्तहान के चार महीने पहले से हमारे खेल-कूदों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लग जाता था, क्योंकि पण्डित जी अपने किसी विद्यार्थी का फेल होना बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। दीवाली बीती नहीं कि पण्डित जी की आज्ञानुसार हमें अपने-अपने घरों में सुबह चार बजे उठकर पढ़ने बैठ जाना पड़ता था। जो लड़का चार बजे उठकर पढ़ना न आरम्भ कर दे उसकी खैर नहीं। कड़कड़ाती हुई सरदी में भी कम्बल ओढ़कर एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ में लट्ठ लिए हुए पण्डित जी विभिन्न गलियों में रहने वाले अपने सभी विद्यार्थियों के घरों पर जाकर आवाज़ लगाते थे—फलाने! और फलाना अगर एक आवाज़ में न बोला तो उसकी खैर नहीं। इस बुरी तरह धुनते थे कि देखने वालों को दर्द लगता था। लड़कों के माता-पिता मारपीट के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते थे। विद्यार्थी को पढ़ाने से पहले उसके अभिभावकों से मारपीट की शर्त वे तय कर लेते थे। "छड़ी लागे छम-छम और विद्या आवे धम-धम" के सनातन सिद्धान्त में उनका अटूट विश्वास था।

उस समय शहर में कुल जमा दो-तीन सिनेमा घर थे। उनमें भी हिन्दुस्तानी फिल्मों का सिनेमा केवल एक 'रायल' ही था, जो कि अमीनाबाद में था। मूक चित्रपटों की हीरोइन मिस पन्ना, मिस लोबो, गौहर, जुबेदा, जेबुन्निसा, माधुरी, सुलोचना आदि हम लोगों के परम आकर्षण की जिन्स थीं। परन्तु दिसम्बर से लेकर मई के पहले हफ्ते तक हम उनकी झलक भी न देख पाते थे। सिनेमा देखना तो दर किनार, चौक से अमीना-

बाद तक जाने का आर्डर भी न था। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक लड़का अपनी मां के साथ किसी रिश्तेदार के घर अमीनाबाद गया था। संयोग की बात है कि पण्डित जी भी उस दिन अमीनाबाद गए हुए थे। वह लड़का अपने सम्बन्धी के बेटे के साथ बाज़ार घूमने निकल आया था। पण्डित जी ने उस देख लिया। देखते ही उनके चेहरे पर ऐसी घबराहट आ गई मानो वह लड़का आत्महत्या करने के लिए निकल पड़ा हो। पचास कदम से दौड़ते हुए पण्डित जी उनके पास पहुंचे और हाथ पकड़कर हांफते हुए बोले, "मोए अमीनाबाद घूम रहा होगा।" फिर उसकी एक न सुन अपनी ही धुन में उस भरे बाज़ार में ही धुन डाला। आसपास भीड़ जमा हो गई। लोगों ने समझा कि शायद यह लड़का पण्डित जी की जेब काटकर भागा है, इसलिए वे उसे मार रहे हैं। बमुश्किल तमाम उन्होंने यह सुना कि वह अपनी मां के साथ एक सम्बन्धी के घर आया है, सिनेमा देखने नहीं आया। पण्डित जी उसका हाथ पकड़कर सम्बन्धी के घर गए, अन्दर से सूचना मंगवाई, और जब उन्हें विश्वास हो गया कि लड़के का कथन सत्य है, तब उन्होंने उसे छोड़ा।

गर्मी शुरू होते ही उनकी आज्ञा से हममें से हर एक को नित्य प्रति प्रातःकाल ब्राह्मी बूटी पीनी पड़ती थी और वह भी एक खास दूकान से लाकर। जो ब्राह्मी बूटी न पिए उसे भी मार पड़ती थी। परीक्षा के दिनों में दो नियम हमें और भी पालन करने पड़ते थे। एक तो दिन-वार के अनुसार शकुन करके घर से निकलना और दूसरे पण्डित जी के इष्टदेव, एक खास मंदिर के गणेश जी, के दर्शन करना। इन कार्यक्रमों में चूक पड़ जाने पर भी करारी मार पड़ती थी। शकुन वाली कविता तो मुझे अब तक याद है—

"रवि को पान सोम को दर्पण, मंगल को गुड़ कीजै अर्पण।
बुध को धनिया बीफै राई, सूक कहे मोहि दही सुहाई।
सनीचर कहे जो अदरक पाऊं, तीनों लोक जीत घर जाऊं।।"

इतना सब हमसे कराने के बाद पण्डित जी अपने कमज़ोर विद्यार्थियों को पास करवाने के लिए स्कूल के मास्टरों की खुशामद भी किया

करते थे। एक बार उनके ही मुहल्ले में रहने वाले एक मास्टर महोदय ने उनके एक विद्यार्थी को फेल कर दिया। पण्डित जी उनसे बेहद बिगड़े। उनके घर के सामने गली में खड़े होकर पण्डित जी ने उन्हें सैकड़ों गालियां सुना डालीं और यह धमकी भी दे दी कि "निकलना साले कभी, मारे जूतों के खोपड़ी गंजी कर दूंगा।"

चार महीने तक वे मास्टर महोदय अपने एक पड़ोसी के पिछवाड़े से दूसरी गली में होकर आते-जाते थे, क्योंकि पण्डित जी अपने चबूतरे पर जूता लिए हुए रोज़ उनकी प्रतीक्षा किया करते थे।

रिज़ल्ट के दिन के लिए भी उनका एक आदेश था—पास हो के आओ तो हाथ में तरबूज़ की फांक ज़रूर हो। परीक्षाफल निकलने के दिन पंडित जी घनघोर पूजा-पाठ कर बड़े आकुल-व्याकुल भाव से अपने घर के सामने वाले चबूतरे पर बैठकर हम लोगों की प्रतीक्षा किया करते थे। दूर से हम लोगों को देखकर उन्हें फिर इतनी भी ताव न रह जाती थी कि लड़के पास आकर उन्हें अपना परीक्षाफल सुनाएं। इसीलिए तरबूज़ की फांक हाथ में रखने का आदेश था। दूर से ही तरबूज़ की फांक देखकर उन्हें हमारे रिज़ल्ट का पता चल जाता था। एक बार परीक्षाफल के दिन मेरे नये जूते ने मेरे पैरों को छालेदार बना दिया था। इसलिए लंगड़ाता हुआ चला आ रहा था। रास्ते में तरबूज़ वाले के यहां मुझे फांक भी न मिल सकी, क्योंकि लड़कों ने खरीद ली थी। मैं खाली हाथ पास हुए लड़कों से दस कदम पीछे पैर के छालों से परेशान लंगड़ाता हुआ चला आ रहा था। मेरे हाथ में तरबूज़ की फांक न देखकर पण्डित जी ने समझा कि मैं फेल हो गया। तैश में भरे पण्डित जी चबूतरे से लपककर उठे और लड़कों की भीड़ चीर कर मेरे पास पहुंच उन्होंने धमाधम घूंसे और चांटे लगाने शुरू कर दिए। "मुर्दे, तुझे इत्ता-इत्ता पढ़ाया फिर भी फेल हो गया।"

मेरे मित्रगण चिल्लाए, "पास हो गया है पण्डित जी, पास हो गया है।" पण्डित जी ने मारना छोड़कर एक सेकिण्ड के लिए प्रश्न और प्रसन्नता से भरी हुई दृष्टि से मुझे देखा और फिर दूसरी धुन में मारना शुरू कर दिया, "अबे तो तरबूज़ की फांक क्यों नहीं लाया? पचास बार कह चुका हूं कि मुझे दिल की बीमारी है, फिर भी मेरा दिल दहला देते

हैं, ऐसे हैं आजकल के कम्बख्त चेले !"

मारने में मेरे आदिगुरु तन्मय हो जाया करते थे, यह सच है, परन्तु उनको अपने बच्चों के समान फल खिलाना भी उन्हें सुहाता था। लड़कों की पढ़ाई को लेकर इतना अधिक सतर्क रहने वाले प्राइवेट ट्यूटर अब कहां मिलेंगे ? पण्डित जी अब नहीं रहे, परन्तु उनकी करालता की वह स्मृति आज बड़ी मधुर होकर मेरे ध्यान में आ रही है। मैंने उनकी बहुत मार खाई है, क्योंकि हिसाब में कच्चा था। नशे में वे अक्सर मुझे बेंतों ही बेंतों धुना करते थे। ऊपर से पण्डित जी की मां, बहन, भावज उस मार को देखकर चिल्लातीं, "अरे लड़के को मार डालेगा क्या ?" पर पण्डित जी एक बार बेंत उठाकर तब तक नहीं छोड़ते जब तक उनकी सांस न फूलने लगे।

मैं उन्हें अपनी हर किताब छपने पर अवश्य ही भेंट करने जाता। जब पहली किताब छपी तो उसमें मैंने लिखा था कि "जिनकी बेंतों की मार की कृपा से आज इस योग्य हुआ।" जब दूसरी किताब लेकर पहुंचा तो उसमें यह सब न लिखकर कुछ और लिखा था।

पण्डित जी बोले, "यह सब कुछ नहीं, वही बेंतों की मारवाला मजमून लिखो बेटा।" उसके बाद से मैं बार-बार यही करने लगा। पण्डित जी मेरी नई किताब को सुबह जब घर से निकलते तब लेकर ही निकलते। जिससे मिलते, जहां जाते वहां बात चलाकर वह पुस्तक अवश्य दिखलाते, कहते, "यह मेरा शिष्य है। देखिए, इसने लिखा है कि बेंतों की मार के बदौलत यह इस योग्य बना। यही इसकी योग्यता है।"

यदि कोई उनसे किताब पढ़ने के लिए मांगता तो वे उसको न देते थे, कह देते, "यह पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है। इसको तुम न समझ पाओगे।" पण्डित जी न स्वयम् किताब पढ़ते थे और न किसीको पढ़ने देते थे। किताब उनके हाथ में तब तक अवश्य रहती थी जब तक कि उसका एक-एक पन्ना ढीला होकर उड़ न जाए।

१८

पड़ोसिन की चिट्ठियां

सावित्री सीने की मशीन खरीदने गई थी। लेकिन बड़ी देर हो गई। मैं उतावला होकर सोचने लगा कि अब तो उसे आ जाना चाहिए। तीन बजे हैं। पिछले बीस दिनों से, जब से सावित्री यहां आई है, हम पहली बार इतनी देर के लिए अलग हुए थे। नई पत्नी वैसे ही आकर्षण की चीज होती है—उसके सामने दुनिया में कुछ नहीं दिखलाई देता।

इन बीस दिनों में हमने दुई को इकाई के रूप में देखा है। हमने इतना प्यार एक-दूसरे पर निछावर किया है कि हमें स्वयं ही अपनी अमूल्य प्रेम निधि की थाह नहीं मिलती, और फिर सावित्री कवयित्री।

"पोस्टमैन!"—दरवाज़े की खटखट के साथ आवाज़ आई और दरवाज़े की नीचे की झिरी से कुछ चिट्ठियां और पत्रिकाएं कमरे के फर्श पर आ फिसलीं। जब से सावित्री आई मेरे घर पोस्टमैन रोज़ आने लगा है, वरना मेरी चिट्ठियां तो होली-दिवाली में ही आया करती थीं।

मैं दरवाज़े के आगे फर्श पर बिखरी हुई डाक को देखता रहा। उठने में आलस लग रहा था। सावित्री के अब तक न आने के कारण मन में अनख भी थी।

इस सावित्री को अपनी जीवन-संगिनी बनाने से पहले मैंने इन्कार कर दिया था। श्रीमती जी मेरी भाभी की सगी फुफेरी बहन हैं। भाभी स्वाभाविक रूप से इन्हींके कर-कमलों द्वारा मेरे गले में वरमाला डलवाने का निश्चय कर चुकी थीं।

भाभी नाराज हो गईं, मगर मेरी 'ना' 'हां' में न बदली। इसके पांच-छः महीने बाद अपनी पत्नी का अपेंडिसाइटिस का आपरेशन कराने के लिए सावित्री के भाई साहब झांसी से लखनऊ पधारे। सावित्री भी उनके साथ ही आई थी। मेरे बड़े भैया ने पत्र लिखकर यह आदेश दिया

था कि मैं उनके काम आऊं, लिहाज़ा काम आने लगा। सरकारी फोटोग्राफर हूं। मेरे काम से मेरे अफसर बेहद खुश हैं। उन्हें अस्पताल में काटेज वार्ड भी मिल गया, आपरेशन और देखभाल भी भली प्रकार हुई। सावित्री के भाई साहब अपनी छुट्टी बीतने पर मेरे ऊपर ही पूरी ज़िम्मेदारी छोड़कर लौट गए।···और फिर, जैसा कि जग जाहिर है कि जब एक सावित्री ने यमराज का पीछा न छोड़ा, तो दूसरी भला मुझे क्यों छोड़ सकती थी। उसकी सुन्दरता, कार्य-तत्परता और कार्य-कुशलता तो मन को मोहने वाली लगी ही, बीमार के तीमारदार होने के नाते जब आपस का संकोच मिटा तो उसने बात-बात में अपने मीठे तानों से मेरे पुराने गुनाह के टांके तोड़ दिए। उनकी भाभी भी बढ़ावा देने लगीं।

यह सब सुनकर मेरे लिए कवयित्री का पति बनने के अलावा कोई चारा न रहा। सच बात यह है कि मैं वचन-मन-कर्म से सावित्री का गुलाम हो चुका था।

यह गुलामी कुछ बुरी नहीं रही। इन बीस दिनों के सहवास से ही सावित्री का यह गुलाम अपने-आपको त्रिभुवन का स्वामी अनुभव करने लगा। सावित्री कवयित्री होने के बावजूद निहायत सीधे स्वभाव की और कुशल गृहिणी है।

और वह अभी तक नहीं आई, कोठी के दूसरे हिस्से में रहनेवाली मिसेज़ राजदान के साथ गई थी, बड़ी देर कर दी।

मैं आरामकुर्सी से उठ खड़ा हुआ, डाक उठाई, दो पत्रिकाएं, दो पोस्टकार्ड, एक लिफाफा। पत्रिकाओं के रैपर फाड़े। दोनों में सावित्री शर्मा की कविताएं छपी थीं, एक में उसका चित्र भी था। यह चित्र मैंने ही उतारा था। मैंने सोचा, लिफाफा उसकी भाभी या किसी सहेली का होगा। उसे भी पढ़ने की इच्छा हुई···यह क्या? पत्र की पहली लाइन, पहला सम्बोधन पढ़ते ही मैं सन्न रह गया, मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। सावधान होकर एक बार फिर लिफाफे पर नज़र डाली। शायद है किसी और का पत्र हमारी डाक के साथ-साथ धोखे में आ गया हो, मगर सावित्री का नाम और पता बिल्कुल ठीक लिखा हुआ था। बस यही था कि यह पत्र मेरे 'केयर आफ' होकर नहीं आया था। दिल धुआं-

धुआं हो गया था। खैर, सावित्री नाम के इस भेद-भरे पत्र को पूरा पढ़ जाने की इच्छा ने मन को तनिक सम्भाला। चिट्ठी लखनऊ से ही ग्राई थी। लिखा था :

"मेरी प्राणवल्लभा,

"तुम शायद इस तरह मेरे द्वारा पुकारे जाने से नाराज़ होगी, पर मैं ग्रपने-आपसे मजबूर हूं। तुम ग्रब भी मेरी रूहेरवां हो, मैं हरदम तुम्हारे ही नाम का जाप किया करता हूं।

"रानी, मैं बहुत पापी हूं, तुम्हारे योग्य नहीं। तुम जैसी देवी को पाकर भी ग्रभागा ही रहा। मैं तुम्हारी कद्र नहीं कर सका। पर मैं तुमसे ईश्वर की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि यह दोष मेरा नहीं, शराब ग्रौर उस बुरी संगत का था, जिसने मेरी बुद्धि पर परदा डाल रक्खा था। तुमने मुझे छोड़ दिया, ग्रच्छा किया। जिसके कारण तुमने छोड़ा, या सच कहूं जिस कांच के लिए मैंने तुम्हारे जैसे हीरे को अपने घर से बाहर निकाला, वह भी आज छः महीने हुए मुझे छोड़कर चली गई है। सुना है, बम्बई में सिनेमा-स्टार होने गई है। उस पापिष्ठा ने—अब उसका नाम लेने से भी मुझे नफरत होती है—मेरे जीवन का सारा सत्त्व खींच लिया। मैं इसी काबिल था।

"सावित्री, पिछले तीन वर्षों में हर पल ग्राठों पहर मैंने तुम्हें ही याद किया है। कई बार ग्रात्महत्या का विचार भी ग्राया, पर ग्रशोक का ही ध्यान कर रुक गया। उस गरीब की मां मैंने छीन ली। ग्रब खुद भी न रहूं तो वह वेसहारा ग्राखिर कहां जाएगा। उसका क्या होगा?

"तुम्हारा पता लगाते हुए यहां ग्राया हूं। अशोक भी मेरे साथ ही है। कल मैंने तुम्हारे नये पति के साथ तुम्हें हज़रतगंज में देखा था। तुम मुझे सुखी नज़र ग्राईं। तुम्हारा वह पति देखने में तो शरीफ ही लगता है। मैं तुमसे किस तरह बतलाऊं कि ग्रपनी सावित्री को दूसरे के साथ देखकर मेरा दिल कितना रोया है। तुम्हारा नाम लेकर पुकारने के लिए दिल बावला होकर बार-बार उछला। बड़ी मुश्किल से मैं ग्रपने ऊपर काबू पा सका। खैर, तुम खुश रहो प्रिये!

"...क्या एक बार मिल सकोगी? एक बार आ जाओ, मैं तुम्हारे

चरण छूकर तुमसे क्षमा मांगना चाहता हूं। बस, इतना ही चाहता हूं। आओगी ? मेरे लिए न सही, अपने अशोक के लिए ही एक बार, बस एक बार। मैं होटल में आठों पहर तुम्हारी ही प्रतीक्षा करता रहूंगा।

केवल तुम्हारा

अभागा, राम"

एक सांस में पत्र पढ़ गया, इतनी ज़रा-सी देर में ही मेरी दुनिया मेरी न रही। थोड़ी देर के लिए मेरी चेतना हत हो गई।

सावित्री का कोई और भी दावेदार है ? सावित्री किसीके बेटे की मां है? सावित्री, जिसे मैं अपनी, केवल अपनी समझता था।···पर इसने मुझे ठगा क्यों ? मेरी भाभी ने मुझे क्यों इस तरह बे-आसरा कर दिया ? ओह, मैं कहीं का न रहा।

विश्वास का उठना ही प्रलय है। दीन-दुनिया और ईश्वर से, अपने से मेरा विश्वास उठ गया। खोखलापन बढ़ता ही जा रहा था। मैं सोचने लगा कि सावित्री के सामने आने पर मैं उससे नज़रें कैसे मिलाऊंगा ?

घड़ी ने चार के घण्टे बजाए। मेरा ध्यान उधर गया। सावित्री अभी तक नहीं आई। शायद उसका पहला पति उसे रास्ते में कहीं मिला हो, शायद वह अपने बेटे को देखने चली गई हो, इन विचारों ने मुझे बेहद बेचैन बना दिया है। सहसा विचार आया कि इस पत्र को यहीं पलंग पर खुला छोड़कर चला जाऊं, सावित्री आएगी, पत्र पढ़कर जो उसका जी चाहेगा, करेगी। उसे अपने पहले पति के पास लौट जाना हो तो लौट जाए। तीर की तरह विचार आया, मैंने बेखुदी के आलम में कपड़े पहने, जल्दी-जल्दी उसी पत्र पर एक लाइन लिखी कि तुम स्वाधीन हो। आघात, आंसू और अंधेरा यही उस समय मेरे रहनुमा थे। जिधर बढ़ा ले चले, मैं बढ़ चला।

घंटों वीराने में बैठकर तरह-तरह की बातें सोचकर बिता दिए। सावित्री अगर अपने पहले पति के पास जाना चाहे, मान लो, चली जाए, तब मैं दुनिया को मुंह किस तरह दिखाऊंगा। दोस्त-अहबाब खिल्ली उड़ाएंगे। मैंने सोचा कि ऐसी दशा में मैं यह घर, नगर, नौकरी सब छोड़कर संन्यासी हो जाऊंगा।···लेकिन अगर वह मेरे पास ही रहना

पसन्द करे ?

बाहर का अंधेरा मेरे मन के अंधेरे से मिलकर चारों ओर घटाटोप छा गया। कहीं कुछ नहीं सूझ रहा था। कदम अपने-आप मुझे घर की ओर बढ़ा ले चले, शायद उनके लिए भी दूसरा कोई चारा न था।

खिड़की के जंगले की परछाईं बगीचे की सड़क और चारदीवारी के किनारे लगी मेहंदी की बाढ़ पर लम्बी होकर पड़ रही थी, और उस परछाईं के बीचोबीच एक इंसान की छाया अंकित थी। वह इंसान सावित्री के अलावा और कौन हो सकता था ? मेरे पैर वहीं के वहीं ठिठक गए, एक बार यह इच्छा भी हुई कि लौट चलूं।

"कौन है !" कोठी का चौकीदार दूसरी ओर से गश्त लगाता हुआ मेरी तरफ आया। मुझे जवाब देने पर मजबूर होना पड़ा।

जंगले की परछाईं से इंसानी परछाईं झट से अलग हो गई, मेरे घर के दरवाज़े खुल गए। सावित्री दरवाज़े पर खड़ी थी।

मैं सावित्री से नज़रें न मिला सका, सीधा जाकर आरामकुर्सी पर गिर पड़ा, और आंखें मूंद लीं। मन की तहों में दबी हुई मेरी आशा के अनुरूप सावित्री का स्वर न सुनाई दिया। मेरी खीझ और बढ़ गई। पल, मिनट बनकर बढ़े और मिनट भी बीत गए। सहसा मुंदी आंखों पर तेज़ चमक पड़ी, कैमरा क्लिक होने की आवाज़ कान में आई। आंखें खुल गईं, देखा मेरी पत्नी कैमरा लिए खड़ी मुस्करा रही है। मुझे देखते देखकर उसने कहा—"तुम्हारा यह मूड तो अब दुबारा देखने को मिलेगा नहीं, फोटो खींच ली ताकि याद रहे।"

इतनी देर की असाध्य वेदना के कारण बात बड़े ही उलझे और अटपटे ढंग से मेरे कानों में प्रवेश कर सकी।

सावित्री हाथ पकड़कर खींचते हुए बोली—"उठिए, उठिए, आपको तो बीवी की बेवफाई सता रही है, और मेरी आंतें भूख के मारे सुलग-सुलगकर कंडा हो रही हैं। कहती हूं चलो भी, उठो, हाथ-मुंह धो लो। अभी मेरा लड़का और भूतपूर्व पति आनेवाला है मुझे लेने के लिए।"

सावित्री मुझे अपने अनुशासन में बांधती गई। जैसे-जैसे मन सम्भलता गया उस पत्र को लेकर मेरा कौतूहल भी बढ़ता गया। पर

सावित्री को तो मुझे अभी और सताना था। अपनी खरीदी हुई मशीन दिखलाई, स्टोव, बिजली की इस्तिरी दिखलाई, मेरी कमीज़ों के लिए कपड़ा दिखलाया, सबके दाम बतलाए, कितनी दूकानें घूमकर किफायत-शारी से सौदा किया, इसका ब्यौरा सुनाने लगी।

मैंने कहा—"सावित्री, मैं बात सुनने के लिए मर रहा हूं!"

"मैं क्या जानूं? सावित्री शर्मा नाम की कोई और स्त्री नहीं हो सकती क्या?"

"पर यहां का पता—"

"इस कोठी के अकेले किरायेदार क्या तुम्हीं एक शर्मा जी हो?"

"तो क्या, शर्मा जी, वकील साहब की···?"

"शी! धीरे बोलो। हां, उनका भी वही नाम है। मिसेज़ राज़दान मुझे बतलाती थीं, कि पहले ये शर्मा जी की बड़ी लड़की सरोज को पढ़ाने आया करती थीं, फिर इन्होंने सिविल मैरेज कर ली।"

अपनी स्थिति को सुरक्षित पाकर मेरे मन में श्रीमती सावित्री शर्मा के प्रति सहानुभूति उमड़ने लगी। ध्यान गया वे बड़ी सरल और शान्त हैं, और उनके चेहरे पर सदा उदासी की काली छाया भी पड़ी रहती है। शर्मा जी भी बड़े सज्जन और गंभीर पुरुष हैं। उन्हींकी कृपा से मुझे यह घर मिला है। क्या उन्हें अपनी पत्नी के पिछले रिश्ते का पता होगा?

रात बड़ी देर तक हम एक-दूसरे की बांहों में सुरक्षित पड़ोस के घर की बातें करते रहे।

हमलोग सुरक्षित होकर भी परायों के लिए उदास रहे। पड़ोसिन की चिट्ठी उसे दे दी जाए, अथवा नहीं, इसपर भी विचार किया।

अंत में हमने चिट्ठी न देने का निश्चय किया। दो रोज़ बाद फिर पत्र आया। पत्र लम्बा था और क्षमा-याचना से भरा हुआ, बड़ा ही करुण था। तीसरे-चौथे रोज़ फिर पत्र आने लगे। डाकिया उन्हें मेरी सावित्री के समझकर मेरे घर छोड़ जाता था और हमलोग भी परायी कहानी जानने के लिए उन्हें चुराकर पढ़ते रहे। इस बीच में मेरी सावित्री ने वकील साहब की सावित्री के साथ अधिक उठना-बैठना शुरू कर दिया। सावित्री पड़ोसिन सावित्री की प्रशंसा करते नहीं अघाती थी। वकील

साहब की पहली पत्नी के दोनों बच्चों को उसने ऐसी ममता दी है कि उन्हें अपनी मां की याद भी नहीं आती। वकील साहब का जीवन भी शांति और संतोष से भरा है।

एक दिन पत्र आया। यह पत्र सबसे छोटा था। लिखा था, "मुझे इसकी शिकायत नहीं कि तुमने मुझे माफ न किया, सिर्फ मौत ही मेरे गुनाहों को माफ कर सकती है, अशोक को बुखार आ गया है, डाक्टर टाइफायड बतलाता है, पर अब मुझमें किसीकी तीमारदारी करने का कुछ भी उत्साह नहीं रहा। आज शाम से कल सुबह तक किसी भी समय, खास तौर पर ऐसे समय जब अंधेरा मेरी मनहूस सूरत को तुम्हारी दृष्टि से बचा सके, अशोक तुम्हारी कोठी के फाटक पर पड़ा होगा। अपने बच्चे पर दया आए तो उठा लेना।"

पत्र पढ़कर हम दोनों घबड़ा गए। पड़ोसिन से उसकी चिट्ठियां छिपाकर हमने बड़ी नादानी, बड़ा अपराध किया। इससे एक व्यक्ति की जान चली जाएगी। चोरी करना आसान है, पर चोरी उगलना बड़ा ही कठिन। फिर भी हमने यही करने का निश्चय किया। सावित्री बोली—"तुम होटल जाकर इस राम को बुला लाओ। मैं सावित्री से किसी तरह सारी बात समझाकर कह दूंगी।"

होटल के कमरे में पड़ोसिन के भूतपूर्व पति और उसके बीमार बच्चे को देखकर बड़ी ही दया उपजी। राम का शरीर कांटे की तरह सूखा हुआ, चेहरे पर मुर्दनी, केवल फटी-फटी आंखें ही जाने किस आशा की ज्योति से जगमगा रही थीं। पड़ोसिन का बेटा, जिसकी आयु लगभग चार वर्ष की होगी, बुखार में बेहोश पड़ा था। मैंने राम को अपना परिचय दिया और उससे फौरन अपने घर जाने का आग्रह किया। बीमार अशोक को ले जाना या अकेला छोड़ जाना असंभव था। मैंने राम के लौट आने तक वहीं बैठे रहने का निश्चय किया।

लेकिन राम फिर लौटकर न आया, चार-पांच घंटे बाद वकील साहब और उनकी सावित्री ने कमरे में प्रवेश किया।

सावित्री गहरी, उदास, कठोर मुखमुद्रा और आंसूविहीन पथराई दृष्टि से देखने वाली नारी अपने बेटे को देखकर कटे पेड़-सी गिर पड़ी,

बेहोश हो गई।

घर जाने पर मेरी पत्नी ने बतलाया कि बड़ी देर तक राम के बैठे रहने पर भी, अपनी पत्नी को एक झलक देखने के लिए गिड़गिड़ाहट भरी प्रार्थना करने पर भी, मेरी सावित्री के बार-बार कहने पर भी, पड़ोसिन ने मिलने से इंकार कर दिया था।

सहानुभूति ने दोनों सावित्रियों में सौहार्द उत्पन्न कर दिया। एक दिन मेरी सावित्री ने अंतरंग क्षण में पड़ोसिन से पूछा : "बहन, तुमने अपने पुत्र को तो बचा लिया परन्तु उसके पिता को सदा के लिए मिटा दिया। तुम केवल पाप को ही देखती हो, प्रायश्चित्त को नहीं ?"

पड़ोसिन सावित्री ने कुछ देर मौन रहकर एक दीर्घ श्वास छोड़ते हुए कहा : "परिस्थितियों ने जीवन में दो पति तो दिए; पर दो मन कहां से लाऊं बहन ? अब तो एक जो था वह भी पत्थर हो गया—केवल कर्त्तव्य हो गया।"

पड़ोसिन सावित्री का पीला और सूखा चेहरा उसके पत्थर मन का प्रतीक बन गया था।

भतीजी की ससुराल में

रायबरेली नहीं, बांसबरेली की बात कह रहा हूं—वहीं, जहां पागलखाना है, लकड़ी का काम होता है, जहां की पूड़ी और चाट मशहूर हैं, जहां एक बार मुशायरे में शामिल होने के लिए हज़रत 'शौकत' थानवी को थर्ड का टिकिट लेकर सेकेंड क्लास में जाने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, जिसकी बदौलत उनकी 'डब्लू० टी०' कहानी उनके दिल के फफोलों का मरहम बन चुकी है।

स्कूल में जागरफी और ज्योमेटरी इन्हीं दोनों से डरता रहा, वर्ना आज मैं कम से कम यह तो बतला ही सकता था कि बरेली लखनऊ से किस दिशा में पड़ता है। फिर भी बुद्धिमानों के लिए इतना इशारा दे देना काफी होगा कि रात के दस बजकर सत्ताईस की गाड़ी से दिसम्बर की कड़कती हुई सर्दी में मुझे बरेली जाना पड़ा। संडीला, हरदोई, तिलहर, शाहजहांपुर आदि स्टेशन बीच में पड़े थे, और यह भी सुना करता हूं कि बरेली से हाथ-भर के फासले पर मुरादाबाद भी है।

भतीजी को ससुराल से विदा कराने जा रहा था। चलते वक्त तक अम्मा, बाबू, भइया और भौजी सबने इस बात की चेतावनी दे दी थी कि समधी के यहां खाना मत। मैंने भी इसे रूमाल में गांठ बांधकर याद रक्खा।

कहना नहीं होगा कि मैं बर्थ पर बिस्तर बिछाकर आराम से बरेली पहुंच गया।

कड़ाके की सर्दी में मैं लाख बार चेष्टा करने पर भी स्टेशन पर दतून-कुल्ला, स्नान-ध्यान और जलपान करने का साहस सवेरे-सवेरे न कर सका। यह सोचकर गया था कि दिन में ग्यारह बजे की गाड़ी से सवार होकर शाम के चार बजे तक घर वापस आ जाऊंगा।

नाश्ते के लिए जिस वक्त सामने चाय और मेवा आई तो इच्छा हुई कि प्रतिज्ञा भंग कर दूं, परन्तु साहस न हुआ। सोचने लगा कि इस महीने में प्रदोष के दो व्रत न सही तीन सही। जी कड़ा करके हाथ जोड़कर विनीत भाव से मैंने कहा, "माफी चाहता हूं। बस कृपा भाव बनाए रक्खें।"

"देखिए साहब, मैं इस रिवाज के सख्त खिलाफ हूं कि लड़की वाला अपने समधी और दामाद के यहां कुछ खाए-पिए नहीं।" लड़के के पिता ने कहा। मैं सोचने लगा कि घंटे-डेढ़ घंटे के लिए इनके यहां रहना है, फ़िर अहसान क्यों लिया जाए। हाथ जोड़कर मैंने खीसें निपोरते हुए कहा, "हें! हें! हें! बाबूजी इसकी तो कोई बात नहीं है। कल रात चलते वक्त कुछ इतना अधिक खा गया था कि अभी तक हज़म नहीं हुआ। खट्टी डकारें आ रही हैं, रात-भर जागा हूं इसलिए सर में दर्द भी है। इस वक्त न खाऊंगा तो तबियत ठीक हो जाएगी।"

लाचारी का भाव प्रकट करते हुए समधी साहब ने कहा, "खैर, फिर आपकी मर्ज़ी। उस ख्याल से अगर आप खाना न खाते हों तो मैं वाकई बहुत बुरा मानूंगा।"

"अजी वाह, अजी वाह, आप तो कैसी बातें करते हैं, बाबूजी। अरे, सब आप ही का दिया खाते हैं।"

बाबूजी ने कन्टोप से कान ठीक तरह ढकते हुए प्रसन्न भाव से कमर पर हाथ बांधकर कमरे में टहलना शुरू किया।

घड़ी ने नौ बजाए और मैंने समधी साहब से कहना शुरू किया कि साहब, जल्दी कीजिए, गाड़ी का मामला है। दिन-भर के बाद शाम होते-होते अपने घर पहुंच जाएंगे।

समधी साहब भी उस वक्त हां में हां मिलाकर, तड़पड़ घर में घुसकर घरवाली से बार-बार सुना आते की बहू को ग्यारह बजे वाली गाड़ी से जाना है। उसके चाचा जल्दी मचा रहे हैं।

घरवाली आखिर लड़के की मां थी। खीझकर वह एकाएक मन ही मन यह निश्चय कर बैठी कि ग्यारह बजे की गाड़ी से वह अपनी बहू को न जाने देगी।

नौ बजा, सवा नौ, साढ़े नौ, पौने दस, साढ़े दस, घर से स्टेशन का

आधा घंटे का रास्ता है और ठीक ग्यारह बजकर पांच मिनट पर गाड़ी लखनऊ के लिए रवाना हो जाती है।

मैंने उनसे बार-बार कहा कि देखिए गाड़ी छूटने वाली है आप कृपया बच्ची को विदा करने की व्यवस्था करें, और वह बार-बार घर में जाकर घरवाली से झगड़ लेते थे। इस प्रकार जल्दी-जल्दी करते हुए घड़ी ने पौने ग्यारह बजा दिए, और जब ग्यारह बजने में पांच मिनट बाकी थे तब समधी साहब ने आकर फरमाया, "तांगा मंगा दूं, जल्दी कीजिए।" जेब से टाइम-टेबुल निकालकर मैंने उन्हें दिखाते हुए कहा, "अब तो मोटर भी शायद वक्त पर स्टेशन न पहुंचा सके।"

मैं सचमुच मन ही मन झुंझला रहा था।

उन्होंने केवल मौखिक रूप में लाचारी प्रकट कर मुझसे माफी मांगकर छुट्टी पा ली। यहां दिन-भर के लिए पेट पर नौबत बज गई।

यहां तक तो हुई भूमिका।

बारह बजे।

घर के अन्दर थालियों की झनझनाहट और रोटी के लिए बच्चों का झगड़ना बाहर स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रहा था। सोचने लगा, आज सवेरे आंख खुलते ही किसका मुंह देखा था। याद आता है कि किसी छोटे स्टेशन पर गाड़ी रुकने से जब मेरी नींद खुली थी, सामने प्लेटफार्म पर एक 'टामी' हाथ में अपने टामी की जंजीर पकड़े मुंह में सिगार दबाए हुए टहल रहा था। खटका तो उसी समय हुआ कि आखिर सवेरे-सवेरे मुझे सुग्रीव की सेना के एक सिपाही के दर्शन करने का क्या फल मिलेगा। परन्तु यह नहीं मालूम था कि आज इसके फलस्वरूप सोलहों दंड की एकादशी मनानी पड़ेगी।

समधी साहब हाथ मलते हुए बाहर आए और वाणी में गुड़ घोलकर कहने लगे, "चलिए भइया साहब, रोटी तैयार है।"

बजाय मेरी भतीजी की ससुराल वालों के यदि किसी और ने मुझसे यह कहा होता, तो अवश्य ही मैं अपने मन-मंदिर में उसकी काल्पनिक मूर्ति स्थापित कर उसके पोपले गालों को चूमकर उसकी गंजी खोपड़ी पर

प्रेम से हाथ फेरते हुए कहता कि बेटा जुग-जुग जियो। खीर की कड़ाही में तुम्हारा सिर हो और भगवान तुम्हें ओकासा और फ़ीनसीन गोल्ड टानिक पिल्स तक सेवन करने की शक्ति प्रदान करें। प्रत्यक्ष रूप में उसके सामने नम्रता की सजीव प्रतिमा बनकर नाज़ोअन्दाज़ के साथ उनका प्रस्ताव स्वीकार कर चट से भोजन-शाला की ओर पैर बढ़ा देता। लेकिन यहां तो बच्चों का ससुर मेरे सामने रोटी का प्रस्ताव रखता हुआ मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे भूखे अनशन व्रतधारी राजबंदी की बैरक के सामने जेलर महोदय दूधिया हलवा सोहन और गर्मा-गरम समोसों का भोग लगा रहे हों।

मैंने उनसे कहा, "क्या बताऊं, अभी तक खट्टी डकारें आ रही हैं। कल का खाना अब तक कम्बख्त कुबड़े की तरह मेरे पेट की थैली में आसन जमाए बैठा है।"

उन्होंने कहा, "आप तो बड़े मज़ाकिए मालूम होते हैं। अबकी जब आपके भाई साहब को पत्र लिखूंगा तो इसका ज़िक्र ज़रूर करूंगा कि भाई वाह, क्या खुशमिज़ाज भाई पाया। सच मानिए, आपसे मिलकर तबीयत बहुत ही खुश हुई।"

भूखे पेट से व्यंग्य और खिजलाहट का राम-बाण सर्र से छूटा। अपनी बत्तीसी बाहर की ओर निपोरते हुए मैंने कहा, "हें! हें!! यकीन मानिए कि आपके यहां आकर तथा आपके दर्शन कर मेरी तबीयत भी बहुत ही प्रसन्न हुई।"

थोड़ी देर तक और इसी तरह 'ना-हां' का मधुर सम्भाषण होने के बाद वह यह कहते हुए अन्दर चले गए, "फिर जैसी आपकी मर्ज़ी।"

शरीर के अन्दर ऐसा मालूम होने लगा कि कुरुक्षेत्र का मैदान बन गया है। उसी समय भगवान कृष्ण और अर्जुन का रथ मेरे हृदय पथ के खांचे में खड़खड़ करता हुआ आगे बढ़ गया। आज इस समय पेट पर हाथ फेरता हुआ, पान चबाकर मैं भली भांति सोच-विचार कर यह बात निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि उस दिन कृष्ण जी ने दो मिनट के अन्दर गीता के अट्ठारहों अध्याय सुना दिए थे। मन में रह-रहकर यही ख्याल आ रहा था कि यदि इस समय यमराजरूपी धोबी आकर मेरे इस पुराने मैले

शरीर रूपी कपड़े को धोने ले जाकर मुझे नई खोल पहना दे, तो कम से कम किसी अंधेरे घर का चिराग बनकर, नई अम्मा के स्तनों का दूध पी-कर अपने पेट की ज्वाला शान्त करूं। सचमुच गीता का वह श्लोक मुझे तब से सारहीन मालूम पड़ता है। खैर, उसके बाद ही मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा कि मेरे पेटरूपी रथ के सारथि सखा कृष्ण की उत्तेजनामयी आध्यात्मिक बातों को सुनकर उत्तेजित अवस्था में नरोत्तम अर्जुन ने क्रुद्ध भाव से गाण्डीव को टंकारा।

रोयें उठ खड़े हुए, दिमाग की नसें झन-झन कर बज उठीं। हृदय-रूपी श्मशान पर आशा की चिता थक-थक चट-चट जलने लगी। एका-एक ख्याल आया कि कल रात चलते समय भौजी ने ओवरकोट की जेब में मेवा भर दी थी। जेब भारी हो जाने के ख्याल से मैंने उसे उलटकर वहीं पटक दिया था। शीघ्रतापूर्वक कुर्सी से उठकर खूंटी पर टंगे हुए ओवरकोट की जेबों को टटोलने लगा। काश, उस वक्त किशमिश और काजू के तीन-चार दाने निकल आते! ......शरद बाबू के 'चरित्रहीन' की प्रधान पात्री किरणमयी की भांति हाथ से अपना ललाट ठोकते हुए मैंने भी कह दिया, "हाय रे जला कपाल!"

समधी साहब खा-पीकर लम्बी डकार मारते और 'ओ३म्-ओ३म्' करते हुए कमरे में दाखिल हुए। सोच रहा था कि बाज़ार घूमने के बहाने किसी हलवाई के यहां जाकर अपने पेट को तर्पण दूं। इसी इच्छा से मैंने कोट और टोपी उठाई।

"कहिए साहब, किधर सवारी जा रही है?" उन्होंने कहा।

"कुछ नहीं ऐसे बैठे-बैठे तबीयत ऊबने लगी, मैंने कहा, चलो बाज़ार ही घूम लिया जाए।"

वे तत्परता के साथ बोले, "अरे साहब, अकेले कहां जाइएगा। आप को मालूम नहीं, बरेली के तांगेवाले साले बड़े बदमाश होते हैं। और फिर आप नये आदमी ठहरे। चलिए, मैं भी साथ चलता हूं।"

मैंने बड़ी ना-नू की, परन्तु वह न माने। तांगेवालों की बदमाशियों का वर्णन करते हुए उन्होंने कपड़े पहनना आरम्भ किया।

मैंने अपने मन में कहा कि बरेली के सिर्फ तांगे वाले ही नहीं, वरन

सभी लोग अव्वल दरजे के पाजी होते हैं।

तांगा जब शहर की भीड़-भरी सड़कों पर दौड़ रहा था, तब मैं केवल यही देख रहा था कि आखिर बरेली की इतनी बड़ी आबादी में कितने आदमी मेरे समान छैल-चिकनिया बने प्रसन्नता और बीमारी का अभिनय करते हुए अपने पेट को चूहों की कुश्ती का अखाड़ा बनाकर घूम रहे हैं।

सड़क पर थोड़ा आगे बढ़कर एक हलवाई की दूकान नज़र आई। लोग पूड़ियां खरीद रहे थे, मिठाइयां खा रहे थे, और हलवाई की दूकान का धुआं उठकर मेरे मन-मुकुर को धूमिल करता हुआ आगे बढ़ा। मुंह में पानी और आंखों में रोब भरकर मैंने बगल में बैठे हुए समधी साहब की ओर एक बार निहारा। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे यमराज की ड्यूटी का चौकीदार मेरे सामने विकराल रूप लिए हुए पान चबा रहा है। इच्छा हुई कि नाक पर एक घूंसा जमाकर कहूं कि कम्बख्त तुझे इस समय मिर्गी ही क्यों नहीं आ जाती, जिससे कि मैं हलवाई की दूकान से पानी लेने के बहाने मिठाई के चार कौर ही मुंह में रख लेता।

पेट में आतिशबाज़ी का प्रोग्राम शुरू हो गया। चर्खी, बान, अनार और कम्बख्त जी ललचाने वाली चुटपुटी फुलझड़ियां क्षण-क्षण के बाद मेरे मुंह की टंकी को खोलकर पानी का अन्दाज़ लगा लेती थीं।

सिर की नसें अपने हिसाब जैसे हरमोनियम की धौंकनी हो रही थी जोकि मालिक की मर्ज़ी के अनुसार ज़रा-से इशारे पर पूरी राग, दूध राग गंडेरी राग, षठराग भरी, राग और रागिनियों को बजाकर मुझे प्रलोभन देता ही चला जा रहा था।

आपसे क्या अर्ज करूं कि किस तरह मैंने शाम के चार बजे तक अपना वक्त काटा। उस समय रह-रहकर यही ख्याल आता था कि हमारे लखनऊ में टेढ़ी कबर के पहलवान की पूड़ियां कितनी स्वादिष्ट होती हैं, कालिका भंडार के रसगुल्ले, रामासरे की दूकान की गिलौरियां, दुनिया की समस्त उत्तम खाद्य-सामग्री के काल्पनिक स्वाद ने भूख और प्रचण्ड कर दी। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ने लगा कि शेष शैया पर लेटे हुए भग-

वान विष्णु की नाभि से बजाय ब्रह्मा के बुटबल का सन्तरा पैदा हुआ, जिसे लक्ष्मी जी ने अपने हाथों बड़े प्रेम से मुझे प्रदान किया।

शरीर के अन्दर की दुनिया में आशा और निराशारूपी देव और दानव हृदय-सागर का मंथन कर उसमें से ताज़े-ताज़े गरम-गरम समोसे, हलवा, रायता, चटपटी चटनी आदि सुन्दर-सुन्दर रत्न निकाल रहे हैं और मैं महादेव शंकर की तरह किनारे खड़ा हुआ मुंह के पानी को कालकूट की तरह गले में उतार रहा था, जिसकी गर्मी शान्त करने के लिए मुझे भी सर की जगह गले में मफलर लपेटना पड़ा।

अक्ल गुम थी, दिमाग हैरान था कि आखिर इस बच्ची के ससुर से किस तरह अपनी जान बचाकर किसी हलवाई की शरण लूं। एकाएक समस्या कुछ हल-सी होती दिखाई पड़ी। मैंने टाइम-टेबुल को मौका पाकर समधी साहब के बही-खाते वाली मचान पर धीरे से फेंक दिया और जैसे ही समधी साहब ने बैठक में प्रवेश किया, मैंने उनसे कहा, "बाबूजी, एक गाड़ी यहां से चार बजकर बावन मिनट पर भी जाती है। आज्ञा दीजिए तो इसीसे बच्चों को लखनऊ ले जाऊं। अभी स्टेशन जाने का वक्त भी है।" उनकी समझ में यह बात कुछ आ गई, उन्होंने कहा, "अच्छी बात है, दो तांगे मंगवाए देता हूं।" खैर साहब, दस मिनट के बाद ही स्टेशन पर जाने की पूरी तैयारी हो गई थी। समधी साहब इस बात पर अड़ गए कि बिना मुझे कुछ खिलाए-पिलाए घर से विदा नहीं होने देंगे।

बड़े असमंजस में पड़ा। जिस प्रतिज्ञा के कारण दिन-भर आंतों को कंडे बनाकर जलाया और अब केवल पेट भरने के ही लालच से मैं पांच घण्टे पहले ही स्टेशन के वेटिंग रूम में अपना आसन जमाने की फिक्र में हूं। मुझे जल्दी थी, इधर वह ज़िद कर रहे थे। लाचार होकर मैंने भरे हुए दूध के गिलास के दो-तीन घूंट पी लिए। सामने पड़ी तरकारी रक्खी हुई थी। सोचा कि अगर सब खा जाऊंगा तो दिन-भर की बीमारी का अभिनय झूठा प्रमाणित हो जाएगा। एक पूरी उठाकर उसका एक कौर तोड़ा और आलू के टुकड़े मुंह में रखकर पानी पी लिया।

समधी साहब बोले, "साहब, आपने तो कुछ खाया भी नहीं।"

इच्छा हुई की समधी साहब से कह दूं, "मियां, क्यों अपनी और मेरी

जान के गाहक बने हो। आग में घी छोड़ते हो। फिर कहते हो कि आग तेज़ी क्यों पकड़ रही है।" लेकिन फिर भी मैंने उनसे नम्रतापूर्वक कहा, "आपकी आज्ञा का पालन कर लिया। अब जान बख्शिए। आपकी कृपा से पेट अब तक तम्बूरे की तरह तन चुका है। डर लगता है कि कहीं बद-हज़मी न हो जाए।" समधी साहब बड़ी तत्परता के साथ अन्दर जाकर चूरन की चार गोलियां ले आए और कहा कि इसे खा लीजिए, दस्त साफ हो जाएगा और बदहज़मी की शिकायत न होगी।

हर एक बात की एक सीमा होती है। दिन-भर भूखा रहा और शाम को बजाय भोजन के हाज़मे की गोलियां खाने को मिल रही हैं। मेरा क्रोध अपनी सीमा पार कर बाहर निकल चुका था, लेकिन फिर शान्त हो गया। लाचारी थी, आंख बचाकर गोलियां इधर-उधर फेंक भी नहीं सकता था, चुपचाप मुंह में रख लीं।

तांगे आए, उनपर सामान रक्खा गया। बच्ची को भी एक तांगे पर बैठा दिया और मैं समधी साहब से खड़ा होकर विदा मांगने लगा। जेब से एक रुपया निकालकर उनकी सेवा में समर्पित करते हुए कहा, "जो कुछ आपके यहां खाया-पिया हो उसका यह दाम है।"

समधी साहब ने हंसते हुए कहा, "अच्छा-अच्छा, अभी इसे जेब में रखिए, स्टेशन पर भुगतान हो जाएगा।"

आप यकीन मानिए, कि मेरे पैरों तले से ज़मीन खिसक गई। कम्बख्त ने मेरी सारी बनी-बनाई आशारूपी कुटिया फूंक मारकर उड़ा दी। बड़ी नम्रतापूर्वक कई बार मैंने उन्हें जाने से रोकना चाहा, लेकिन वह यह कहते हुए दूसरे तांगे पर बैठ गए कि तांगा अकेला छोड़ना ठीक नहीं, आप बहू के पास उस तांगे पर बैठ जाइए।

अगर मेरे पास उस वक्त पिस्तौल होती तो यह निश्चय था कि समधी साहब की गंजी खोपड़ी में, उनके दिमाग से लेकर पेट तक के रहस्यों का भंडाफोड़ करने के लिए मैं एक सुरंग बना देता। रास्ते-भर पछताता रहा कि हाय ! न हुआ मेरे पास अलादीन का चिराग, वरना ढाई गज़ टुकड़े में उन्हें लपेटकर काले पानी में डुबा देता। रास्ते-भर बदला लेने के इसी प्रकार के सैकड़ों उपाय सोचता हुआ स्टेशन पहुंच गया। उस वक्त

लखनऊ के लिए कोई गाड़ी न जाती थी। चार बजकर बावन मिनट की गाड़ी की कथा रेलवे टाइम-टेबुल में परिवर्तन हो जाने के बाद, केवल कोरी कथा ही रह गई थी। यह मुझे मालूम था कि पापी पेट को भोजन से पाटने के लिए ही मैं इतनी जल्दी स्टेशन पर आ गया। परन्तु हाय रे जला कपाल! स्टेशन मास्टर मेरे दूर के रिश्ते से जीजा और समधी साहब के खास साले लगते थे। उनके क्वार्टर में ही आसन जमा। थोड़ी देर बाद भोजन के लिए कहा गया। चट से समधी साहब ने कह दिया कि इनके पेट में दर्द है। बेचारे दिन-भर तो भूखे रहे, दवाई खाई, अभी तक देखिए इस बिचारे का चेहरा कुम्हलाया हुआ है।

खिझलाया तो बहुत, लेकिन कर कुछ भी न सका, क्योंकि दस्त की गोली अपना असर कर चुकी थी। पाखाना हो आने के बाद ऐसा मालूम होने लगा कि मेरी खोपड़ी पर शिवजी नृत्य कर रहे हैं। आंखें बाहर की ओर निकली पड़ रही थीं, पेट पीठ से सटा चला जा रहा था और समस्त संसार उस समय मुझे हलवाई की दूकान में नज़र आ रहा था। ऐसे ही समय कानों को सुनाई पड़ा कि समधी साहब खीर की प्रशंसा करते हुए थोड़ी और मांग रहे हैं।

हड्डियां और पसलियां तक, ऐसा मालूम हो रहा था कि शीघ्र ही इस शरीररूपी इन्द्रजाल को तोड़कर सीधे बैकुण्ठ जाना चाहती हों। आंखें चन्द्रकान्ता सन्तति के तिलस्म का खटकेदार ताला हो रही थीं।

थोड़ी देर के बाद ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे कि शरीररूपी मंदिर में हृदयरूपी घड़ियाल बजना बन्द हो गया हो तथा मेरी जीवन-ज्योति एक बार जल उठकर फिर बुझ गई हो।

आप यकीन मानिए कि दिसम्बर की इस कड़कती हुई सर्दी में भी मेरा शरीर पसीने से तर हो गया। भौचक्का होकर बार-बार आंखें खोलता। अपना बदन हिला-डुलाकर, दिल की धड़कन की परीक्षा कर मैंने निश्चिन्तता-पूर्वक सन्तोष की एक गहरी सांस ली।

अभी हाल ही में मेरे प्रिय मित्र लाला लल्लू लाल जी अपनी लड़की को ससुराल से विदा कराने बरेली गए थे। उनपर ठीक इसी प्रकार की आफत आ चुकी थी। दिल और दिमाग की नसें धड़-धड़ झन-झन कर

अपने लिए भी ऐसे ही चित्र की कल्पना कर रही थीं।

मैं अत्यन्त भयभीत भाव से अपने समधी साहब के यहां पहुचा। मुझे इस बात का दुःख है कि रास्ते-भर जिस चित्र की कल्पना ने मेरे शरीर का पसेरी-भर खून जलाकर मुझे निर्जीव-सा बना दिया था, तथा मुझे अपने समधी साहब की ऐसी सुन्दर कल्पना करने के लिए बाध्य किया, उसे उन्होंने अपनी मीठी बातों और खातिरदारी की अप्रत्याशित व्यवस्था से एकदम बरबाद कर डाला। रास्ते-भर मैंने अपने समधी साहब को जिस रूप में देखा और समझा, उसे उन्होंने एकदम पलट दिया। इच्छा हुई कि अपने दिमाग को दुरुस्त कराने के लिए उसे मैं बरेली के पागलखाने में छोड़ता आऊं।

रास्ते-भर मैंने उनका जितना विकराल रूप देखा था, उतना ही उनके सौजन्यपूर्ण व्यवहार ने मेरे मन में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी।

राम करे जैसा मेरा राजपाट लौटा, वैसा सबका लौटे !

९

बुरे फंसे : बरात में

फंसने-फंसाने के मामले में हमारा अब तक यह दृढ़ विश्वास रहा है कि लोग या तो बदफेली में फंसते हैं, या राजनीति की गुटबंदियों में। इसीलिए मैं हमेशा ही इन दोनों चीज़ों से बचता रहा हूं। यह बात दूसरी है कि इन लतों में खुद फंसने के बजाय दूसरों को फंसाना, भुस में आग लगाकर जमालो की तरह दूर से तमाशा देखना ही मेरी ज़िन्दगी का मकसद···मेरा पेशा है।

फिर भी कइयों के मतानुसार हम कई चीज़ों में गले तक फंसे हुए हैं। मसलन्, मेरे एक संन्यासी हो जाने वाले काका जिन्होंने एक मोक्षस्व-रूपिणी चेली को फांस रक्खा है, और जो अपनी अंतरात्मा में अटकी हुई योग की फांस निकालने के लिए दिन-रात अलख के बजाय गांजे की चिलमें जगाने के लिए अपने चिमटे से धूनी की आग कुरेदा करते हैं कहा करते हैं कि खानदान में एक मैं ही कपूत हूं जो घर-गिरस्ती के माया-मोह में फंसा हुआ हूं, अपने महाजनों की धारणानुसार मैं कर्ज़ में फंसा हुआ हूं, डाक्टरों का कहना है कि खांसी की फांसी ने मुझे फांस रक्खा है, और मेरी पत्नी समझती है कि मेरी नज़रें कहीं और फंसी हुई हैं।

परंतु मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इनमें से एक भी चक्कर में मैं नहीं फंसा। घर-गिरस्ती में तो आज तक नहीं फंसा, बल्कि असलियत यह है कि घर-गिरस्ती ही मुझसे फंसकर अपना करम फोड़ चुकी है। बीवी और बाल-बच्चे नित्य नियम से आधा फाका कर मेरे नाम को रोते हैं, और मैं औरों की महफिलों में अपने हलुवे मांडे से तर रहता हूं। कर्ज में इसलिए नहीं फंसा कि तय कर चुका हूं कर्ज़ कभी अदा नहीं करूंगा। जो महाजन भी हमसे फंसा, उम्र-भर अदालत की गलियों में चक्कर काटता रह गया···कभी एक धेला भी वसूल न कर सका। खांसी एक

ऐसा आसान रोग है जो महज़ गले का खटका दबाते ही पैदा हो जाता है, इसलिए मैं अब भी लोगों को अपने से दूर रखना चाहता हूं, खांस-खांस कर थायसिस का मरीज़ बन जाता हूं। और पत्नी की धारणा तो गंगा उठाके कह सकता हूं कि एकदम निर्मूल है। मैं पहले ही अर्ज कर चुका हूं कि बदफेली और राजनीति की गुटबंदियां, ये दो ऐसे फंदे हैं जिनमें मैं दूसरों को फंसाता हूं, खुद कभी नहीं फंसता। आप इसीसे अनुमान लगा लीजिए कि दफा चार सौ बीस का जुर्म करने वाले मुनाफाखोरों के युग में मैं या मेरे ऐसे आदमी समाज के लिए कितने उपयोगी होते हैं। ऐसा समाजोपयोगी जीव सदा एक प्रकार का दार्शनिक होता है···निर्मम, निर्लिप्त, निरभिमानी। मैं भी ऐसा ही हूं, जल में कमल की तरह रहता हूं, कभी किसी दल दल में नहीं फंसा। मगर मसल मशहूर है कि ईश्वर किसीका गुमान नहीं रखता, सयाना कौआ भी कभी न कभी चिड़ीमार के फंदे में फंस ही जाता है। मैं भी फंस गया, और फंसा भी तो एक बरात में फंसा।

किस्सा यों है कि हमारे मुहल्ले के वयोवृद्ध सेठ छिदम्मीमल को अभी हाल ही में, होली से पांच-सात रोज़ पहले, अपने इक्यासी वर्ष के जीवन में पांचवीं बार विधुर होना पड़ा। सवा साल के अरसे में पंद्रह बरस की सेठानी जी साठ से लेकर बीस बरस तक की उम्र वाले आठ बच्चों की मां बनीं, दादी, परदादी, नानी, परनानी बनीं और भरे-पूरे कुनबे को छोड़कर भरा-पूरा सुहाग लेकर संखिया के सहारे जग की वैतरणी को पार कर गईं। सेठ जी उसी समय से सबके आगे अपना दुखड़ा रोकर कहने लगे कि हाय, किससे होली खेलूंगा, कैसे मेरा मन लगेगा।

सुनते हैं कि घरवाले उसी दिन से छिदम्मी सेठ को खुशामदियों और दलाल किस्म के आदमियों से बचाने लगे। इसका एक कारण है। जब तीसरी मरी तो छिदम्मी सेठ पिछत्तर पार कर चुके थे, उसके मरे के बाद ही माया-मोह से मन हटाकर अपने ठाकुरद्वारे में कीर्तन भी करने लगे थे···कि···तभी मेरे ही जैसे किसी समाजोपयोगी दार्शनिक ने उनकी नौजवानी के मोहनजोदरो को उनके काल-जर्जर हृदय की स्मृतियों से उबारकर एक बार फिर विगत वैभव के उत्साह से भर दिया। नतीजा

यह हुआ कि तब से पूरे-पूरे दो बरस भी न बीतने पाए कि यह दूसरी मरी। लूटने वाले हज़ारों रुपया इसी बहाने से लूट ले गए।

और अब तो छिम्दमी सेठ को चस्का पड़ गया है, उनके कृष्णरूप मन को होली खेलने के लिए···न हो तो साथ बैठकर गुड़िया खेलने के लिए ही एक राधा चाहिए। अधेड़ पतोहुओं और पोतों की जवान-जवान बहुओं को पंद्रह बरस वाली सासों और ददिया सासों से सख्त नफरत होती थी। अंतःपुर की राजनीति में पतंगे जैसी पुरखिन को लेकर आए दिन महाभारत होते थे। अविवाहित लड़के-लड़कियों के क्षेत्र में भी जलन, कुढ़न और मानसिक विकृतियों की नई-नई लीलाएं नित ही हुआ करती थीं। इसीलिए इस बार अब आठों के मेले के दिन छिदम्मी सेठ अपनी सूतक में घुटी हुई खोपड़ी के ताज़े उगते हुए बालों पर खिजाब लगाकर, छकलिया, दुपलिया और चूड़ीदार पाजामे से लैस हो, झुकी कमर को जवानों की तरह तानते हुए पतली छड़ी लेकर बाहर जाने लगे तो पोते ने राह रोककर कहा, "बाबा, अब छकलिये-दुपलिये पर कोई नहीं रीझेगी, बुश्शर्ट और पतलून पहनकर बंदरिया बाग में घूमा करो। माशाअल्ला गबरू जवान हो···सड़क पर रीझनेवालियों की लाशें बिछ जाएंगी।"

बाबा ने बुरा माना। उन घरवालों को कोसने लगे जो उनका सुख नहीं देख सकते थे। इसपर बहुओं के घूंघट से गोले बरसे। जवाबी हमले के तौर पर बाबा ने गंदी से गंदी गालियां बकना शुरू किया। यह धमकी भी दी कि अपनी जायदाद सिरी ठाकुर जी के नाम कर जाएंगे, घरवालों को रुलाकर छोड़ेंगे।

पहली और दूसरी के बेटे तो अस्सी बरस में फटनेवाली बाप की नई जवानी पर शर्म से गर्दन झुकाकर ही रह गए, मगर तीसरी के तीनों लाल जो अपने भतीजों के साथ क्रांति के युग में पैदा हुए और पले हैं, हाकी की स्टिकें लेकर दरवाज़े पर खड़े हो गए। गर्मा-गर्मी में उन्होंने छिदम्मी की छकलिया-दुपलिया के लत्ते-पलत्ते उड़ा दिए, दो-तीन क्रांतिकारी तमाचे भी जड़ दिए, टांग तोड़ने की धमकी देने लगे। बड़े बेटे ने आकर बाप को बचाया।

ऐसे सुसंवाद मुहल्ले के मनोरंजन की सामग्री बनने से नहीं बचा

करते। उसी रात को लाला इंदरमल के कीर्त्तन में, बाबू राधेश्याम के चबूतरे पर, जग्गू वैद की बैठक में···जहां देखो, इसीकी चर्चा चल निकली। एक मनचले ने तो गीत भी जोड़ लिया कि "बूढ़े बैल छिदम्मी लाल, कबर में ब्याह रचाने वाले।"

खबर मेरे कानों तक भी पहुंची। मज़ाक सूझा, फिर लोभवृत्ति जागी। सोचा फटे में पांव डालकर ज़रा हम भी अपने जी की निकाल लें। एक बार हिचक हुई; मैंने अपने समाजोपयोगी जीवन-दर्शन और कला का उपयोग कभी अपने मुहल्ले में नहीं किया था। अब तक इसे सिद्धांत की तरह मानता आया हूं, मुहल्ले वाले निश्चिन्त भी हैं। मगर छिदम्मी सेठ की छदामों में मोहिनी थी। मेरा सिद्धांत टूट गया।

दूसरे दिन छिदम्मी सेठ की हवेली पर पहुंचने से पता लगा कि मोर्चा तगड़ा है। तीसरी के तीनों बाहर वालों को तो क्या, घर के नौकर-चाकरों तक को अपने बाप के पास फटकने नहीं देते थे। घर की स्त्रियां उन्हें मंत्र दे-देकर और उकसाती थीं। मिलने की मना सुनी तो और भी जी में ठान ली। अपने उर्वर मस्तिष्क का लखलखा सुंघाकर किसी तरह हम छिदम्मी मल के पास पहुंच ही गए।

सेठ छिदम्मी को दुखड़ा सुनाने के लिए एक आदमी मिला, अपनी फोश गालियों के कोश से चुन-चुनकर घरवालों के लिए रत्न लुटाने लगे। तीसरी के लाल फिर मारने को धाए। हमने बीच-बचाव किया, समझाया कि "भई, अपनी भुजा के बल पर बढ़े हैं; इतनी माया बटोरी है; ज़िन्दगी हकूमत और रोब-दाब से बिताई है। घर के बड़े हैं। इस उम्र में ऐसा व्यवहार कर इन्हें ओछा मत बनाओ।"

"ओछा तो यह आप ही बन रहा है खूसट। अपनी हविस के लिए दो लड़कियों की ज़िन्दगी मिटा चुका है, अब फिर तमाशा दिखाने चला है। हम इसकी हड्डी-पसली तोड़ डालेंगे···" एक लड़का बोला, दूसरा बोला, तीसरे ने ज़बान खोली···सभी कुछ न कुछ कह चले। किसीने गर्मी से बात की, किसीने सिद्धान्त की चर्चा चलाई, कोई घरेलू दृष्टि से ऊंच-नीच की चर्चा समझाने लगा। सेठ छिदम्मी अपनी अकड़ पर बार-बार सान चढ़ाने लगे। उन्हें सबसे ज़्यादा इस बात पर क्रोध था कि जिन्हें

पैदा किया, उन्होंने ही उन्हें घर में बंद कर रक्खा है। घर में कौवा-रोर मच रही थी। ई जानिब ने भी नारद की तरह सबके मीठे बनकर आग में घी डाला, छिदम्मी लाल का हौसला बढ़ाया। बड़े लड़के को समझाया कि इन्हें सबसे ज़्यादा ताव इसी बात का है कि यह कैद किए गए हैं। ज़रा बाहर हो आएंगे, ठंडे हो जाएंगे, फिर ऊंच-नीच समझाकर बहला लीजिए मैं भी इनके मन का बोझ हल्का करूंगा।

मुहल्ले की मुरव्वत में लड़के हमसे कुछ कह तो न सके, हालांकि मेरा बीच में पड़ना उन्हें खतरे से खाली नहीं लगता था···यह मैं उनके चेहरों पर पढ़ रहा था। मगर यह कि हम भी तो हम ही हैं, बड़े-बड़े इलेक्शन लड़ाकर कइयों के छक्के छुड़वाते हैं, हमने जीवन-भर राजे-रजवाड़ों की रियासतें फुंकवाई हैं। बड़े-बड़े महाजनों को सोलह दूने आठ का पहाड़ा पढ़ाया है। अजी अपने लिए हमने अपने घरवालों तक को उजाड़ा है फिर भला छिदम्मी के लड़के किस खेत की मूली थे। लाला को अपने साथ-साथ घर से निकाल लाया।

सेठ छिदम्मी को हमारे घर आए आध घंटा भी नहीं बीता था कि हवेली से बुलावे आने लगे। छिदम्मी भला क्यों जाते ? वे पहले ही से करेला हो रहे थे, और अब तो मेरी नीम भी चढ़ चुकी थी। सारा घर हार गया, छिदम्मी टस से मस न हुए। कहने लगे, अब तो तभी आऊंगा घर में जब घरवाली साथ होगी। हम भी तन-मन-धन से सेठ छिदम्मी की मनोकामना पूरी करने में लग गए। तन-मन की सेवा में कुछ लगता नहीं था, धन की सेवा में जो लगता था, सेठ उसके प्रोनोट लिख देते थे।

मोहल्ले में प्रोनोटों की चर्चा फैलने लगी। हमारे खिलाफ मोर्चा शुरू हुआ। जब मैं बाहर निकलता, लोग बोलियां-ठोलियां मारते थे। मैं हंसकर निकल जाता था। आप तो जानते ही हैं, मैं दार्शनिक आदमी, अपने काम से काम रखता हूं, मान-अपमान की परवाह नहीं करता। लड़की की तलाश जारी रही। मैं बाहर ही बाहर रहा था, शहर में तूफान होने का अंदेशा था।

एक लड़की मिल गई। छिदम्मी के एक सजातीय अनेक पुत्रियों के

पिता जो अपनी गरीबी की आड़ लेकर दहेज देने के बजाय दहेज लेने में पटु थे छिदम्मी की आयु का हिसाब लगाकर ब्लैकमार्केट का भाव मांगने लगे। मैंने भी समझ लिया कि यह बेटी का बाप मेरी परम्परा का एक समाजोपयोगी दार्शनिक है। दस में सौदा तय किया। छिदम्मी से पन्द्रह की दस्तावेज़ लिखाई।

ब्याह का दिन तय हुआ। चार बराती, एक नाई, एक पुरोहित, एक पाधा और चौथा मैं घर में गौर-गनेश पूजकर दूल्हे के साथ रात के समय बाहर निकले तो देखा, छिदम्मी के आठों लड़के, पोते और मुहल्ले के चार-पांच धनी धोरी दरवाज़े पर खड़े हैं। उन्हें देखते ही मुझे सांप सूंघ गया। सोचने लगा, इतनी गुप्त सूचना केवल मेरे ही किसी साहबज़ादे की मार्फत बिक सकती है। जो भी हो इस वक्त मैं ठगा-सा खड़ा रह गया। उधर छिदम्मी के बड़े मुन्नू ने बाप के कदमों पर टोपी रख दी, दूसरे भी हाथ जोड़कर खड़े हो गए। कहने लगे, शादी करनी ही है तो अपने घर से कीजिए, इस तरह हमारा मुंह काला न कीजिए। आप जो भी हुकुम करेंगे, हमारे सिर-माथे पर होगा।

आपुसदारों ने समझाया, सेठ छिदम्मी भी राज़ी हो गए। मुझे भी तब सच्चे दार्शनिक की भांति मुहल्लेवालों की बात का समर्थन करना पड़ा। तय हुआ कि बरात दूसरे दिन जाएगी, धूमधाम से जाएगी।

बड़े मुन्नू ने सबके सामने ही मुझे ब्याह का अगुआ बनाया और बाप से घर चलने को कहा। यही मैं किसी भी तरह न चाहता था। खुद छिदम्मी भी राज़ी न थे। उन्हें डर था कि कहीं घर जाकर यह सारे दिखावे के सब्ज़बाग समेट न लिए जाएं। मुहल्ले के एक दूसरे रईस लाला उन्हें यह कहकर ले गए कि मुहल्ले के नाते दूल्हे पर हमारा भी हक है।

दूसरे दिन बरात चली। बाजे-गाजे और धूमधाम को देखकर सेठ छिदम्मी भी शरमा गए। घरों के छज्जे और दरवाज़े औरतों से, गली-बाज़ार देखने वालों से पटे हुए थे। सेठ छिदम्मी हमसे कहने लगे, "बड़े मुन्नू ने जो यह सब धूमधाम की है वह हमारी उमर को शोभा नहीं देती।"

हमने कहा, "वाह, सेठ जी। अभी आपकी उमर ही क्या है ?"

सेठ फिर बहक में चढ़ गए। हंसकर बोले—लड़के भी यही कहते हैं।

छिदम्मी के लड़कों ने हर बात में मुझे ही अगुआ बनाना शुरू किया। बराती, नौकर-चाकर, नाई-बाम्हन, बाजे-गाजेवाले सब मेरे ताबे में कर दिए गए। बरात जब मोटरों पर बैठी तो नौशा को लेकर बड़े मुन्नू तो आगे निकल गए, बाजेवालों की बिदाई मुझे ही देनी पड़ी। स्टेशन पर ड्राइवरों का इनाम-इकराम भी मुझे ही देना पड़ा। छिदम्मी के मुन्नू हर बार सामने से नदारत हो जाते थे। मैं परेशान, इस वक्त मेरे साथ जो चाल खेली जा रही है उसका मैं जवाब भी नहीं दे सकता। दूसरा कोई मौका होता तो ऐसे-ऐसे मुन्नुओं को हम उल्लू बना देते, मगर मैंने भी सोचा, शादी से छिदम्मी तो मेरे हाथ रहेगा ही, वसूल कर लूंगा। इसी विश्वास के साथ मैंने मुन्नू के आगे बढ़ने से पहले ही बरातियों के टिकट भी खरीद लिए। तब मुन्नू ने आगे बढ़कर कहा—क्या करूं, मैं तो खर्च दे देता, पर बाबू ने हमसे कहा है कि हिसाब-किताब सब आपही के ज़िम्मे रहेगा, बाद में वह आपसे समझ लेंगे।

मुझे नये सिरे से यकीन हो गया कि बुड्ढा अभी मेरे ही कब्ज़े में है।

पच्चीस-तीस आदमियों की बरात में, शहर के कुछ चुने हुए लोग और छिदम्मी के लड़कों-पोतों के साथ पढ़नेवाले युनिवर्सिटी कालेजों के लड़के—इन्टर क्लास में बरात जा रही थी। जिसे देखो वह मेरा ही मुंह देख रहा था। मैंने सामान चढ़वाया, सबके बैठने का इंतज़ाम किया, कुली-ठेले के पैसे चुकाए, जब ट्रेन चली तो नमो लच्छमी नारायण किया···मगर ट्रेन के चलते ही हमने देखा कि हमारा बड़प्पन बगैर किसी इत्तिला और नोटिस के बड़े मुन्नू के कब्ज़े में आ गया। उनके नौकर-चाकर पान-सिगरेट-शरबत-सोडा का न टूटने वाला क्रम साधने लगे। बरातियों ने मुन्नू को सलाह सूत देना शुरू किया। मैंने देखा कि मुझे अब कोई बैठने तक को नहीं पूछता। लड़कों की टोली हमें बात-बात में कर्ताधर्ता जी के नाम से कभी पैर दबाने के लिए, कभी पीकदान उठाने के लिए, कभी मेरी हथेली को एशट्रे बनाने के लिए पुकारने लगी। पान तकसीम हुए, हम मुंह में रखने ही जा रहे थे कि एक लड़के ने झटककर

छीन लिए। कहने लगा कि आप तो कर्ता-धर्ता हैं, क्या कीजिएगा खाकर। इसी तरह शरबत का ग्लास छिना, सिगरेटें छिनीं। कहते शर्म आती है, मगर यह सच है कि मेरी सारी चतुराई फना हो गई, कोई हमारे हथकंडे बयान करने लगा, कोई हमारी राजनीतिक पोलें खोलने लगा, बराती-घराती—सभी उस हंसी-मजाक का आनंद लेने लगे। मैं करता भी तो क्या, उनकी हंसी को इस तरह सिर-माथे पर चढ़ाने लगा, गोया अपने ऊपर आप हंस लेने की मुझे आदत है। इतने में लड़कों ने एक नई नकल शुरू की। एक लड़का मेरा पार्ट करता हुआ अलग शान से बैठ गया, दूसरा लड़का सौ बरस की बुढ़िया बना। वह बुढ़िया कमर झुकाकर मेरे प्रतिरूप के पास आकर बोली—सुना है, तुम बूढ़ों का ब्याह कराते हो। मेरा भी ब्याह करा दो। न हो तो अपने साथ ही कर लो। मेरे पास दो लाख रुपया है।

मेरी नकल करने वाले ने ऐसा अभिनय किया, जैसे मेरी लार ही टपकने लगी हो। नकल देखकर सारे कम्पार्टमेंट का हंसते-हंसते बुरा हाल हो गया। बुढ़िया के चंचल कटाक्षपात, झुकी कमर के साथ उसका नाचना, पोंपले मुंह से प्रेम के गीत गाना, और फिर अब मेरा और बुढ़िया का डुएड गाया गया तब तो लोगों ने आसमान ही सर पर उठा लिया। मैं पत्थर बनकर सब देखता रहा। इस वक्त हर तरह से बेबस था। मगर नकल के अन्त में जब यह दिखाया गया कि जिस दो लाख की लालच में हमने बुढ़िया से शादी की थी वह रुपये भी न मिले और मेरे घर में सौतों का झगड़ा होने लगा, मेरी कान खिचाई होने लगी···तब मैं किसी तरह भी बर्दाश्त न कर पाया। गर्म हो उठा। सब लोग समझाने लगे कि आप भी बड़े होकर बच्चों का बुरा मानते हैं। अजी, यह तो बरात है, बरात।

खैर, यहां तक भी बर्दाश्त किया। मगर हद हो गई कि जब खाना आया तो यार लोग पत्तल उड़ा ले गए। दूसरी आई, वह भी छीन ले गए। मैंने एक स्टेशन पर उतरकर कम्पार्टमेंट से बाहर जाना चाहा तो सब लोग दरवाज़े पर खड़े हो गए, मेरे पैर छूने लगे, मेरा तमाशा बनाने लगे।

पूरा दिन बीत गया, न पान, न सिगरेट, न एक बूंद पानी, न अन्न का एक दाना···तमाम उम्र में इतना गहरा चकमा कभी न खाया था। बेशर्म ज़िंदगी में शर्म ने घूंघट उठाकर कभी हमको हमारे ही दिल में इस तरह पहले नहीं देखा था।

स्टेशन आया, हमने देखा—-मेरा बक्स और बिस्तर ही गायब। दिन-भर का भूखा, हर तरह से जलील किया गया···इस वक्त मैं अपना आपा ही खो बैठा। मारपीट करने लगा, चीख-चीखकर गालियां देने लगा···लड़के और घेर-घेरकर मुझे हुशकाने लगे। बरात के दूसरे सम्भ्रांत लोग छिदम्मी सेठ को लेकर आगे बढ़ गए थे। प्लेटफार्म पर भीड़ लग गई। रेलवे पुलिस आ गई, पूछने लगी, क्या हुआ। एक लड़का चट से बोला, इसे भूत चढ़ गया है : सामाजिक न्याय तत्काल ही शह दे उठा। लोग मिर्चों की धूनी देने की सोचने लगे।

किसी तरह हाथ-पैर जोड़कर जान छुड़ाई। अपनी दुर्दशा के अंत में मैं यह भी बतला दूं कि विवाह सेठ छिदम्मी का नहीं, वरन तीसरी के तीसरे बेटे का हुआ। मुझसे वैर चुकाने के साथ ही साथ मेरी दुर्दशा दिखाकर सेठ छिदम्मी को आतंकित करना उनके प्रोग्राम का एक सुनिश्चित कार्यक्रम था।

१२

जब बात बनाए न बनी !

बड़े-बूढ़े कुछ झूठ नहीं कह गए हैं कि परदेश जाएं तो ऐसे चौकन्ने रहें, जैसे बुढ़ापे में ब्याह करनेवाला अपनी जवान जोरू से रहता है। हम चौकन्नेपन क्या, दसकन्नेपन की सिफारिश करते हैं, वरना ईश्वर न करे किसी पर ऐसी बीते, जैसी परदेश में हम पर बीती, यानी हम साढ़े पांच हाथ के जीते-जागते मौजूद रहे और परदेश ने हमारे मुंह पर कानूनी तमाचा मारकर कुछ देर के लिए यह साबित कर दिया कि हम फौत शुद यानी कि मर गए।

शहर का नाम-ठाम तो न पूछिएगा, गई-गुज़री बात के लिए किसीको बदनाम करने की हमारी नीयत नहीं। हां ! इतना जान लेना ही आपके लिए काफी होगा कि वह नगर एक दूसरी भाषा बोलने वालों के प्रदेश में है और हम पापी पेट से बंधे साल-भर के वास्ते वहां रहने गए थे।

मकानों की समस्या के विषय में तो आप सब जानते ही हैं, हमें भी बड़ी किल्लत का सामना करना पड़ा। होटल सस्ता होकर भी बड़ा महंगा था। दाम भरपूर और प्रबंध का यह हाल था कि सुबह की चाय दस तकाज़ों के बाद दोपहर में मिलती थी, और दोपहर का खाना अगर आज मांगा गया है तो परसों शाम तक अवश्य पहुंच जाएगा। खैर, बड़ी दौड़-धूप की; दफ्तरी कुर्सियों की मिन्नत-खुशामद की, और तकदीर ऐसी सिकन्दर सिद्ध हुई कि चार महीने बाद ही एक मकान हमारे नाम अलॉट हो गया। हम बड़े प्रसन्न हुए, मकान देखने गए। एक छोटी-सी चाल थी अर्थात् उस नई बनी हुई दो मंज़िला इमारत में एक-एक कमरे वाले बीस घर थे। हम अपने कार्यालय के एक सहयोगी को लेकर उस जगह को देखने गए थे और जब देख ही रहे थे कि एक सज्जन, गोदी में अपने मुनुआं को लिए बड़ी अकड़ के साथ दाखिल हुए और अपनी भाषा

में कुछ पूछा । हम तो खैर नये थे, लेकिन हमारे सहयोगी ने समझकर बात का उत्तर अंग्रेज़ी में दिया । धड़ाधड़ बात होने लगी ।

उन्होंने पूछा—"आप इस घर को ले रहे हैं ?"

उसने कहा—"जी हां ।"

वे बोले—"लेकिन मैं आपको चेतावनी देता हूं कि इस घर में न आइए ।"

"क्यों साहब ? क्या इस घर में भूत रहते हैं ?"

"भूत !" उन्होंने चौंककर शब्द दुहराया, फिर बोले "जी नहीं। यहां हम लोग रहते हैं ।"

"तो फिर क्या चोर-उचक्कों की बस्ती है ?"

हमारे इस प्रश्न से वे लाल-भभूका हो गए, कहा, "आप हमारा अपमान करते हैं । यहां सब शरीफ लोग रहते हैं ।"

हम विनम्र हो गए, दीनता से कहा : "यही सोचकर तो हम भी आ रहे हैं, परदेश में शरीफों का साथ ही ठीक रहता है ।"

"लेकिन आप नहीं आ सकते । यहां सब घर-गिरस्ती वाले लोग ही रहते हैं ।" उन्होंने कहा ।

"हम भी घर-गिरस्ती वाले ही हैं ।"

"लेकिन आप परदेशी हैं । हमारे यहां कोई परदेशी नहीं रह सकता ।"

हमारे दफ्तरी सहयोगी को बुरा लगा । वे भी परदेशी थे, यद्यपि हमारा-उनका प्रदेश भी अलग था और प्रादेशिक भाषा भी । वे गरमा गए, बोले : "परदेशी होना तो कोई अपराध नहीं । आप भी रोज़ी-रोज़गार से बंधकर किसी और प्रदेश में रहने के लिए जा सकते हैं । आपके प्रदेश के बहुत-से लोग हमारे यहां रहते हैं—वे भी तो आखिर वहां परदेशी ही हुए । ये बेजा बात है, हम सब भारतवासी हैं, मानव हैं ।"

हमारे सहयोगी के इस तर्क से वे लुंगी-बनियानधारी मुनुवां खिलावन सज्जन फिर भड़के, कहा, "यह घर मैं अपने साले के लिए अलॉट करवाना चाहता था, लेकिन वेटिंग लिस्ट में उसका नाम दूसरे नम्बर पर हो गया और आपका पहले नम्बर पर । आप यदि अपनी टांग छोड़ दें,

तो यह घर मेरे साले को मिल जाएगा।"

हमने उनको समझाया, "देखिए, सारी दुनिया को अपने पड़ौस में बसाइए, मगर साले-सुसरे से सात कोस दूर रहना ही आपकी गृहस्थी के लिए शुभ होगा।"

वे गरमा गए, कहा, "आप मेरे साले की इन्सल्ट करते हैं।"

हमने घबराकर चटपट उत्तर दिया, "बारहा कहा कि मेरी मजाल नहीं जो अपमान कर सकूं। और अगर आपको लगा हो कि मैंने अपमान किया है तो लिखित क्षमा मांग लूंगा, मगर हाथ आया घर न छोड़ूंगा। आपका जी चाहे तो मुझे हंसकर या गाली देकर साला कह सकते हैं, मैं दोनों स्थितियों में अहिंसावादी बना रहूंगा।"

जब उनका बस न चला तो हर मिडिल क्लास क्लर्क बाबू की तरह वे गरमा उठे। उन्होंने निजी बात को फौरन राजनीतिक जामा पहनाते हुए कहा। आप हमपर अपना साम्राज्यवाद लादना चाहते हैं। हमारे प्रदेश, हमारे नगर में आकर हमारे मकानों पर कब्ज़ा करना चाहते हैं? ऑल राइट, आई विल सी यू।"

हमने कोई ध्यान न दिया, यह वह या कोई भी प्रदेश क्यों न हो? सारे भारत में क्लर्क-बाबू पहले-पहल इसी तरह पेश आता है, पोलिटिकल भाषा में बोलता है, 'आई विल सी यू' के ज़ोम के साथ गुर्राता है और बाद में हिल-मिलकर एक हो जाता है--बेचारा चलती चक्की में पिसते हुए गेहूं-सा क्यों न कुर्र-कुर्र बोले?

खैर साहब, उस घर में हम रहने लगे। हम बड़ी शराफत से रहने लगे। गृहस्थी के लिए आवश्यक और उचित चीज़ें लाने के साथ-साथ हम गणेश और बजरंगबली के चित्र भी ले आए। घण्टी, दीपक, माला, स्तोत्रों की पोथी, धूपबत्ती आदि भी लाकर सजा ली, ताकि लोग हमें भला मानुष समझें। ऊपर-नीचे, पास-पड़ोस में आते-जाते नमस्कार कर अपना-उनका परिचय लिया-दिया। चार-पांच दिनों में ही उनके साथ सवेरे-शाम राजनीति जमाने और अखबारी समाचारों पर बहसें होने लगीं—बस, एक वही साहब हमसे सीधा रुख न मिलाते थे, जिनका साला पड़ोसी न बन सका था। हमने उनकी चिन्ता छोड़ी; एक के नाराज़ होने से क्या

बिगड़ता है ? हमने साले वाली बात भी औरों को बतला दी ।

मगर एक पखवारा भी न बीता था कि हम अनुभव करने लगे, लोग-बाग हमसे कतराते हैं, अब नमस्कारों में मुस्कान का चमत्कार नहीं रहा, "वेल सर, हाऊ आर यू" का शगूफा भी न छिड़ने लगा, पड़ोसियों के बच्चे-बच्ची भी हमसे, यानी अपने नये 'अंकल जी' से टॉफी मांगने न आने लगे। हम घबराए कि आखिर माजरा क्या है ? कुछ ही दिनों में हम एकदम अकेले पड़ गए, यानी कि लोगों ने नमस्कार का जवाब देना तक किसी हद तक बन्द कर दिया। हमने सोचा कि यह अवश्य ही कोई सालारजंगी चाल है। पर क्या चाल है, यह पता नहीं चलता था। खैर, समूह में सदा दो-एक नरम दिल के भी होते हैं, हमने एक पड़ोसी को बाहर ही पकड़ा, प्रेम से रेस्तरां में ले जाकर कॉफी पिलाई; तब मालूम हुआ कि हमको उस चाल में रहने वाले सरकारी बाबुओं के पोलिटिकल विचारों की जासूसी करने के लिए खास नई दिल्ली से भेजा गया है।

हमने फौरन ही इसकी काट शुरू की, मगर जासूस का डर पक्का बैठ चुका था, बात हाथ से निकल चुकी थी। हमारी सफाई से पड़ोसियों का संदेह और बढ़ा।

चार दिन बाद हमारे कमरे के पिछवाड़े वाले दरवाज़े के पास एक मुर्गियों की ढाबली दिखलाई पड़ने लगी। हम डरे कि जाने किसकी हो, खामोश रहे। मगर शाम को जब घर आए तो देखा कि चाल की सारी स्त्रियां अपनी भाषा में गर्मागर्म शब्द छोंकती मेरे ऊपर टूट पड़ीं। हमने बहुत समझाया, कि हमने मुर्गी-पालन कार्य कभी नहीं किया; हम घोर वैष्णव हैं, प्याज़-लहसुन तक नहीं खाते, मगर कौन सुनता है ? दूसरे दिन मकान-मालिक भी गरमाता आया। हमने उसे लिखकर दिया कि मुर्गियां हमारी नहीं। मगर उसके बाद से हम सबकी नज़रों का खटकता खार हो गए।

इसके बाद एक सप्ताह ही बीता था कि एक दिन सुबह सिपाही के साथ साले साहब को लेकर बहनोई साहब आ धमके। दरवाज़ा खट-खटाया और हमारे कुण्डी खोलते ही सब लोग अन्दर घुस आए और बिना पूछे-ताछे धड़ाधड़ हमारा सामान फेंका जाने लगा।

हमने पूछा, "ये क्या माजरा है ?"

बतलाया गया कि जिसके नाम वैधानिक रूप से घर अलॉट हुआ है, वह रहने आया है।

हमने कहा कि घर तो हमारे नाम अलॉट हुआ है। उन्होंने नाम पूछा, हमने अपना नाम बतलाया। वे बोले, इस नाम का किरायेदार तो परसों इसी घर में हार्टफेल से मर गया। सब लोगों की गवाही है। और हम कोई ऐरे-गैरे कल ज़बर्दस्ती इस घर में घुस आए हैं।

आप समझ सकते हैं, कि हमपर क्या गुज़री होगी। यानी अब तक ज़िन्दा थे और परसों मर चुके थे। हम, हम न थे बल्कि ऐरे-गैरे थे। हमारा सामान सड़क पर गया और घर साले का हो गया। हमारे बनाए कोई बात न बनी। फिर से अपने-आपको जीवित साबित करने में ही सारा दिन लग गया।

१८

जय बम्भोला

शिवरात्रि के मेले की मौजबहार लेने के लिए झोला कान्धे पर और सोटा हाथ में लिए हम भी मगन मस्त चाल से दिग्गज के समान झूमते-झामते महादेवा के पावन क्षेत्र की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। ये देखो, दसों दिशाओं से लो घेरकर महादेव का दर्शनार्थी, ग्रामीण जनता बम बम भोला महादेव की जै जै कारें करती चली आ रही है। लाखों भगत चले आ रहे हैं; गंगाजल की कांवरों पर कांवरें कन्धों पर लादे चले आ रहे हैं। हर एक को बस एक ही लगन लगी है भोलानाथ, तुम्हारे दर्शन कर लें, तुम्हें जल चढ़ा दें, और तुम्हारे सामने गाल बजाकर उलु-उलु-हरहर बमबम के नारों से आकाश गुंजाकर अपना जीवन सार्थक कर लें। क्यों नहीं भगवान, आखिर तुम ब्रह्मा, विष्णु, महेश की हाई कमाण्ड में से एक हो, लय-प्रलय के देवता हो, और वरदानी हो। ऐसे भोले हो कि भगत की एक सच्ची-झूठी मनुहार पर रीझकर मनमाने वरदान दे देते हो, रावण, बाणासुर, भस्मासुर, आदि सभी दुष्ट जन तुम्हींको अपनी तपस्या से फुसलाकर बड़े-बड़े वरदान पा गए और बाद में स्वयं तुम्हें ही कष्ट देने लगे। तब क्यों न लोगबाग तुम्हारी सच्ची झूठी-खुशामद में लगें। लेकिन हे देवाधिदेव, भारत की अनपढ़ गरीब भोली जनता बड़े भाव से तुम्हारी स्तुति करती है, बड़ी अनोखी महिमा बखानती है "बम बम भोलेनाथ कि जिनके कौड़ी नहीं खज़ाने में। तीन लोक बस्ती में बसाए आय बसे वीराने में।"

वाह, बिना कौड़ी के महा महिमामय भगवान तुम्हारी ऐसी निराली स्तुति भारत की जनता ही कर सकती है। वो देखो वो—मंझोले कद का वह भस्म जटा दाढ़ी चिमटा धारी साधु किस ठाठ के साथ अपनी कड़कदार आवाज़ में सुना रहा है:

डमरू डिमिकि डिमिकि डिम बोला।
नाचें अगड़धत्त बम्भोला
पहिदे आसमान का चोला
माथे गंग नाग तन डोला
छानैं सौ मन भंग का गोला ।।नाचें अगड़धत्त।।

कमाल है विश्वनाथ, तुम्हारे भक्त जन तुम्हें सौ-सौ मन भंग के गोले छना देते हैं, आक-धतूरे का भोग लगाते हैं—यही नहीं एक कवि ने तुम्हारी भंग ठन्डाई का जो नुस्खा लिखा है उसे तो पढ़ने मात्र से ही जब हमें घनघोर नशा आ जाता है तब तुम्हारा क्या हाल होता होगा, ये तुम्हीं जानो। कवि जी ने तुम्हारे श्रीमुख से भगवती पार्वती जी को क्या कहलाया है, सुनोगे प्रभु ?—सुनो :

एक समय अति मगन मन बोले बिहंसि महेस।
मैं जइहौं प्रिय गोकुले सुनहु उमा उपदेश।।
घर बन में विजया नहीं मिले न हाट बाजार।
मोहि भांग बिन भामिनी कौन करेगा प्यार।।

: कवित्त :

जैहौं ग्राम गोकुले गोविन्द पद बन्दन को
मोहि जलपान को सामान करवाय दे
सुकवि शिवराम सौंफ कासनी पछोरि फोरि
घोरिकै अफीम तीन तामैं मिलाय दे।
काली मिर्च कालकूट सिंधिया धतूर तोरि
संखिया सुफैद रंग डैल से डराय दे।
लाय दे करोर बोर केसर सो सराबोरि
एती थोरी भांग मेरी झोरी भराय दे।

देख रहे हो भोलानाथ, एक भगत ने तो सौ मन भंग का गोला छनाकर ही संतोष कर लिया था पर दूसरे को तो करोड़ बोरे भंग की

भी थोड़ी ही मालूम पड़ रही है जिसमें संखिया, धतूरा, कालकूट और अफीम भी मिलाई गई है और ऐसी गहरी पंचरत्नी को भी मात्र तुम्हारे जलपान का ही साधन बतलाया गया है। हद हो गई योगेश्वर, हद हो गई—भला एक बात तो बताओ, इतनी भांग पीकर तुम्हें हाई या लो ब्लडप्रेशर तो नहीं होता ? अजब हाल कर रखा है तुम्हारे भक्तों ने, एक ओर तो तुम्हें इतनी नशे की गर्मी देते हैं और दूसरी ओर लोटों पर लोटे और कलसों पर कलसे गंगाजल चढ़ाते हैं। इस मार्च के महीने यदि और किसीको इतना नहलाया जाए तो उसे डबल निमोनिया ही हो जाए। मगर आप तो भूतनाथ हैं, सर्दी-गर्मी सब एक समान ही अपने अंदर लय कर लेते हैं। आपके इसी विकट महादेवपन के कारण ही तो बड़े-बड़े कवियों ने आपके साथ बड़े-बड़े मज़ाक किए हैं। अरे संत शिरोमणि, गोस्वामी तुलसीदास जी तक आपकी ब्याह-बारात का रंगीला वर्णन करने से नहीं चूके। राष्ट्रीय आंदोलन के ज़माने में भी आपके भक्तों ने आपकी नशेबाज़ी की आदत का खूब मज़ाक उड़ाया है। उस ज़माने का किसी कवि का बनाया एक कवित्त मुझे याद आ गया—सुनिएगा भगवन्, सुनिए :

गांधी की न आज्ञा गांजा भांग आदि पीने की
भूतनाथ आप अब भंग न पिया करें
छोड़ें पुरानी अपनी अड़बंगी चाल
जोरू साथ बैठे न चकल्लस किया करें
छिड़ा है भारत में स्वतंत्रता का घोर युद्ध
भारतीय नाते भाग इसमें लिया करें
आप बनें लीडर गनेश वालंटियर बनें
कह दें उमा से जाके पिकेटिंग किया करें॥

यह सब हंसी-मज़ाक सिद्ध करता है कि जनता आपको बेहद चाहती है। आपकी श्रद्धा से सराबोर होकर कोसों और मीलों से चली आ रही है—बम बम भोले। बम्भोले। हर हर महादेव।

लेकिन भोलेनाथ ! एक बात सच्ची बताना। क्या तुम अपने इन

बड़े-बड़े मन्दिरों में सचमुच विराजमान हो ? यहां तो तुम्हारे नाम पर तुम्हारे पण्डे-पुजारी तुम्हारे भक्तों को लूट रहे हैं। ये देखो, तुम्हारे मन्दिर के अंदर क्या मारा-मारी मची हुई है। तुम्हारे पुजारी लोग तुम्हारे अपढ़ भोले भक्तों के हाथों से झपाझप प्रसाद और पूजा-सामग्री छीन-छीनकर कोने में धरते जा रहे हैं। इन पुजारियों के चेहरों पर भक्ति-भावना की एक धुंधली-सी छाया भी नहीं पड़ी है। सूरत से ही ये लोग डाकू लग रहे हैं, डाकू। तुम्हारे इस मन्दिर में चांदी के किवाड़ हैं, संगमर-मर का फर्श है, चांदी का विशाल सर्प और सोने का छत्र है, बांस-बल्लियों की आड़ें लगी होने पर भी भक्तों की भीड़ तुम्हारे दर्शनों के लिए टूटी पड़ रही है—पर तुम यहां कहां हो भगवान। ···कहीं दिखाई नहीं पड़ रहे हो, फूल, बेल-पत्र और धतूरे के फलों का एक पहाड़ तो अवश्य दिखलाई देता है—तो क्या इसीके नीचे तुम दबे हुए हो ? तुम अपने भक्तों की अंध श्रद्धा से दबे हुए हो देवता ? नहीं तुम यहां हरगिज़ हरगिज़ नहीं हो सकते। शिव ! तुमने तो सदा इन लुटेरे पण्डे पुजारियों के कर्मकाण्ड का विरोध कर भक्तिरस की अमृत धारा प्रवाहित की है। अपनी मोटी दक्षिणा की लालच से जब इन पोपपंथी कठमुल्लों ने राजा-प्रजा का कीमती धन और समय यज्ञ पर यज्ञ कराके स्वाहा करना शुरू किया, राष्ट्र को अंधा और अपंगु बना डाला तब तुमने भक्ति की महिमा बढ़ाई। तुमने उपदेश दिया कि जो व्यक्ति अपने घर से चलकर नित्य जितनी दूर गंगा-स्नान करने जाता है, जितने कदम चलता है, वह एक-एक कदम पर सौ-सौ वाजपेय यज्ञों का पुण्यफल पाता है। वाह रे त्रिलोचन भगवान्, तुमने हज़ारों-लाखों रुपयों का घी-यवधान्य आग में जलाकर दक्षिणा से मोटे बनने वालों के धर्म को निकम्मा सिद्ध कर दिया।

दक्षिण भारत के मीनाक्षी मंदिर की दीवार पर तुम्हारी 'पुट्टू लीला' के चित्र भी मैंने देखे हैं—कैसी सुन्दर कथा है ! एक बुढ़िया थी, बिचारी के कोई नहीं था, बड़ी गरीब थी, रोज़ चावल के पुट्टू बनाकर बेचती और तुम्हारा भोग लगाती थी। एक बार तमिलनाडु में अकाल पड़ा, बारह बरस तक पानी न बरसा तो राजा ने हुकुम लगाया कि प्रजा के सब लोग मिलकर तालाब खोदें। धनी लोग मजूरों को पैसे दे-देकर

अपनी खेती काम कराने लगे पर विचारी बुढ़िया कहां से पैसे पाए, और उसके शरीर में इतनी शक्ति भी नहीं थी कि फावड़ा चला सके। बेचारी बुढ़िया बड़ी दुखी थी। तुम्हारी पूजा करके वह कहने लगी कि हे महादेव बाबा, मेरे तो कोई बेटा भी नहीं, मेरी खेती कौन काम करेगा। उसका ये कहना था कि तुम झटपट एक जवान मजूर का भेस धरकर वहां आ पहुंचे और कहा कि मां, मैं तुम्हारा बेटा हूं, ये प्रसाद के पुट्टू तुम मुझे खिला दो तो मैं तुम्हारे बदले तालाब खोद आऊंगा। बुढ़िया बोली कि ये पुट्टू तो शिवजी को भोग लगाऊंगी। तुम्हें नहीं दे सकती। पर तुम भी ठहरे एक ही नटखट, तुमने कहा कि नहीं मैया, मैं तो यही पुट्टू खाऊंगा तब तालाब खोदने जाऊंगा। बुढ़िया बोली: "मैं चाहे आप फावड़ा चला लूंगी पर ये शिवजी का भोग है सो उन्हें ही चढ़ाऊंगी।" फिर जैसे ही वह तुम्हारी मूर्ति पर पुट्टू चढ़ाने लगी वैसे ही वह पुट्टू उड़कर मजूर के मुंह में चला गया और मजूर यानी कि तुम हंसने लगे। बुढ़िया चकित हो गई। तुम्हें पहचानकर वह जैसे ही तुम्हारे चरणों पर गिरने लगी कि तुमने कहा: "नहीं, तुम तो मेरी मां हो।" और एक ही दिन में तुमने तालाब खोदकर पानी निकाल दिया। तुम गरीबों के भगवान हो, असहायों के सहायक हो, दीनबंधु दीनानाथ हो। अपने भक्तों की तीखी बातें सुनकर भी तुम उन्हें निहाल कर देते हो।

यहां मुझे आंध्र के कवि श्रीनाथ की कथा याद आ रही है। बेचारे एक जंगल से चले जा रहे थे, प्यास के मारे उनका गला चिटक रहा था, न तालाब न बावड़ी, न नदी न नाला—बेचारे बड़े ही दुखी थे। चलते-चलते उन्हें दूर पर एक कुआं दिखाई दिया। दौड़ते-हांफते वहां पहुंचे कि अब पानी पीने को मिलेगा पर वहां पहुंचकर देखा तो कुआं अंधा था। श्रीनाथ बेचारे बड़े दुखी हो गए। प्यास के मारे झुंझलाकर उन्होंने अपने इष्टदेव से, यानी कि तुमसे, कहा कि हे शंकर जी, तुम एक बीवी गंगा जी को अपने सिर पर चढ़ाकर और दूसरी पार्वती जी को वामांग में बिठाकर भंग के नशे में बैठे-बैठे चकल्लस कर रहे हो और यहां तुम्हारे एक भक्त की प्यास के मारे जान निकली जा रही है। तुमको लज्जा नहीं आती? भक्त की फटकार सुनकर तुमने तुरन्त ही गंगा जी को उस

अंधे कुएं में उतार दिया और प्यासे कवि श्रीनाथ की जान बचाई। यानी कथा का अर्थ ये है कि जहां सच्चा भाव होता है वहां कर्म भी होता है और जहां भाव है, कर्म है, वहां ज्ञानगंगा भी आप ही आप प्रवाहित होने लगती है।

हे त्रिनेत्र, तुम ज्ञान देते हो, भक्ति देते हो, शक्ति देते हो। तुम्हारा यही रूप मंगलकारी है, मैं तुम्हारे इसी रूप को भजता हूं। जय भोले। भोले बम्भोले।

भोलेनाथ, क्या मरज़ी है तुम्हारी ? होली के दिन नगिचियाए हैं। आजकल तो डबल गहरी छनती होगी मेरे गुरू, गुरुओं के गुरू। मगर एक बात कहें ? कहोगे कि गुरू से छेड़खानी करता है, भारतीय संस्कृति के खिलाफ काम करता है। नहीं नहीं विश्वंभर, सो बात नहीं। अपने यहां के भक्ति दर्शन की यही तो महिमा है—

पितु मातु सहायक स्वामि सखा
तुम ही इक नाथ हमारे हो।—

--सो तुम गुरू भी हो, यार भी हो। इस वखत हमारा तुमसे यारी बरतने का मूड है, सो यारी बरतेंगे और इस बहाने तुम्हें तुम्हारे ही हित में कुछ खरी-खरी सुनावेंगे। हम पूछते हैं भोले, महंगाई कितनी बढ़ गई है कुछ इसकी भी खबर रखते हो कि सदा अलमस्त ही बने रहते हो। भगवती से पूछो भला कि तुम समान अलमस्त का खर्चा कैसे चलाती होंगी। ये तो कहो कि कार्तिकेय और गणेश अपने-अपने काम-धन्धे से लगे हैं। नहीं तो गुरू, ये तुम्हारा सारा नाच-हुड़दंग कब का खत्म हो जाता। हम पूछते हैं गुरू जी, इतना बढ़िया नाचते हो, 'नटराज', 'आदि नट' कहलाते हो, एक बढ़िया-सी कम्पनी खोल के दुनिया-भर में अपना डांस ट्रुप क्यों नहीं घुमाते ? तुम्हारी नकलें उचार-उचार कर नर्तक लोख लखेसरी बन गए और तुम भिखारी के भिखारी ही रहे। भोलानाथ, तनिक कल्पना तो करो। ठाठ से सूट-बूट पहने हो, नेकटाई की गले से सर्प डोल रहा है, हाथ में

सिगरेट का टिन है, चेहरे पर लापरवाही और खोएपन की अदा है, कपाल पर तीसरा नेत्र और सिर के जटाजूट में गंगा जी मानिन्द फव्वारे के मद्धिम-मद्धिम पिक्टोरियल एफेक्ट मार रही हैं। भूतनाथ, इस छबि को देखते ही सारी दुनिया तुम्हारे पीछे भूत बनी डोलेगी। जहां जाओगे फोटोग्राफरों का हुजूम पीछे जाएगा। आटोग्राफ देते-देते तुम्हारा हाथ मशीन हो जाएगा। बड़े-बड़े राजमहलों में दावतें उड़ाना, मज़े से भारतीय संस्कृति पर लेक्चर देना और फिर ठाठ से एक महल बनवाकर रहना, बैल छोड़ मोटर, हवाई जहाज़ की सवारी करना। चेला होने के नाते मैं भी तुम्हारी कम्पनी का मैनेजर हो जाऊंगा। मेरे भी ठाठ हो जाएंगे।

क्या कहा? आइडिया पसन्द नहीं आया। कहते हो यों ही गुज़री है, यों ही गुज़रेगी। हां, एक तरह से तो ठीक ही कहते हो नटराज! जब तुम्हारे भक्त तक इतने अल्पसन्तोषी हैं कि पुकार-पुकारकर कहते हैं:

चना चवेना गंगजल जो पुरवै करतार।
काशी कबहूं न छांड़िए विश्वनाथ दरबार।।

जब भक्त ही कहीं नहीं जाना चाहते तो तुम अपने भक्तों को छोड़कर भला कहां जाओगे?

मगर भोले, आज के समय में ये अल्पसन्तोष की फिलासफी ठीक नहीं।

किम दातेन धनेन वाजि करिभि:
प्राप्तेन राज्येन किम।
किंवा पुत्र कलत्र मित्र पशुभिर्देहेन गेहेन किम
ज्ञात्वेतत्क्षणभंगुरं सपदिरे त्याज्यम् मनोदूरत:
स्वात्मार्थम् गुरु वाक्यसो भज-भज श्री पार्वती बल्लभम्।।

अच्छा गुरू नाथ, हमारी एक शंका का समाधान करो। ये तो तुम जानते ही हो कि आज हम साफ-साफ कहने-सुनने के मूड में ही बैठे हैं।—हम पूछते हैं भोले—यह मान लिया कि यह शरीर क्षणभंगुर है—माटी में से आया बन्दे माटी में मिल जाना है—बिलकुल ठीक है। फिर ये

माया-मोह कि राजसुख पा लूं और मान-सम्मान पा लूं, दिग्विजय कर लूं। मामले-मुकदमे लड़ लूं। ये मेरा है, ये तेरा है—ये सब व्यर्थ है—आदमी को नित्य ब्राह्म मुहूर्त में उठकर माला हाथ में लेकर ओम् नम: शिवाय ही जपते रहना चाहिए। वाह, क्या बात है, अगर ऐसा ही जीवन होता तो फिर कहना ही क्या था। मगर उसमें दो भारी अड़चनें हैं—एक तो पेट और दूसरे विवाह की समस्या। तुम कहोगे, क्या भौतिक बातें करता हूं, अध्यात्म में क्यों नहीं मन रमता। पर तुम्हारे भगत लोग कह गए हैं गुरू कि :

भूखे भजन न होहिं गुपाला, यहि लेओ कण्ठी यहि लेओ माला ।।

यह पेट का कुत्ता नहीं मानता। इसको भरने के लिए माला को खूंटी पर टांगना ही पड़ेगा। अच्छा टांग दी, अब क्या करें ? चोरी करें, झूठे धर्म और तुम्हारी झूठी महिमा को बखान-बखानकर भोली-भाली श्रद्धामयी जनता को ठगें या मेहनत-मज़ूरी करें, सच्चा काम करें।

क्या कहा ? काम करना चाहिए। सच्ची मेहनत की रोटी खानी चाहिए। ठीक है, तो अपने कथावाचकों और पोप गुरुओं की बेतुकी ज़बानों पर ताला लगा दो प्रभु, जो दिन-रात इस मूलभूत पेट से संचालित दुनिया को मिथ्या बताते हैं। तुम्हारे भक्त थे वे कलाकार, शिल्पी, इंजीनियर और मज़दूर जिन्होंने एलोरा में ऊंचे पहाड़ को मोम की तरह काट-मोड़कर तुम्हारा अद्भुत कैलास गुफा मन्दिर बनाया है। भोलेनाथ, तुम्हारे हिमाच्छादित श्वेत कैलास पर्वत की शोभा अनन्त है, दिव्य है, यह माना, पर तुम्हारे भक्तों का—मनुष्यों का बनाया हुआ एलोरा का कैलास मन्दिर भी अपनी अपूर्व है, इंच-भर पत्थर का टुकड़ा भी बाहर से लाकर नहीं जोड़ा—एक ही पहाड़ में से अर्ध चन्द्राकार में दो मंज़िला इमारत बनाई, उनमें मण्डप बनाए, आले, खंभे और उनमें मूर्तियां उकेरीं, बीचों-बीच मुख्य मन्दिर बनाया --कमाल किया है। हमारे पुरखे, तुम्हारे भगत, ऐसे गहरे छनन्ता थे कि पहाड़ को ही नशीली लहरभरी परम स्वादिष्ट ठंडाई बनाकर पी गए और सदियों के लिए प्रेरणा का नशा छोड़ गए। और उसमें एक चकल्लस भी है। वह अदभुत मंदिर बनाने वाले अपनी श्रद्धा-

विनय की छाप भी छोड़ गए हैं।

रावण को लेकर तुम्हारी वह कथा जो प्रसिद्ध है न कि एक बार रावण को अपनी शक्ति पर इतना गर्व हुआ कि उसने अपने गुरु अर्थात् तुम्हारा कैलास पर्वत उखाड़कर अपने हाथों पर उठा लिया। तुम उस समय पार्वती जी के साथ बैठे चौपड़ खेल रहे थे। कैलास पर्वत हिला तो डरकर पार्वती जी तुमसे लिपट गईं। तुमने ध्यान लगाकर कारण समझ लिया और अपना एक हल्का-सा अंगूठे का भार पर्वत पर डाल दिया। पर्वत फिर अपनी जगह पर बैठ गया। अहंकारी रावण के हाथ दब गए। एलोरा के कैलास मंदिर में इस कथा की भावमूर्ति दो-तीन जगह बनाई गई है मानो बनाने वाले तुमसे कहते हैं कि हमने कला की शक्ति दिखलाई है। हमने भी बीसियों नहीं बल्कि हज़ारों हाथों से नया कैलास उठाया है, पर हे परम गुरू, हम रावण की तरह अहंकार नहीं प्रदर्शित करते। क्या कहूं, गुरू, तुम्हारे एलोरा वाले मंदिर के उदात्त दर्शन ने मुझे मोह लिया है और तुम्हारे पोप कहते हैं कि माया-मोह छोड़ो। तुम्हारी श्रद्धा में कितना दिव्य शिल्प विकसित हुआ है इस देश में, अमरनाथ कश्मीर से लेकर धुर दक्षिण भारत तक, सोमनाथ, गुजरात से लेकर कटक-उड़ीसा-आसाम तक—नेपाल तक—शिव के रूप में कला की ही महिमा विराजमान है—भोले, पूरा 'इमोशनल इण्टीग्रेशन' अर्थात् भावनात्मक एकता का जाल फैला रखा है तुमने, तुम्हारे नाम पर कितना कर्म हुआ है महादेवा! यह कर्म क्या मिथ्या है? एलोरा, एलिफेन्टा, चिदम्बरम, तंजौर, रामेश्वरम्, खजुराहो आदि में मनुष्य की कितनी मेहनत, सूझबूझ, सामर्थ्य और ज्ञान-भक्ति-साधना रमी है और सबसे बढ़कर कितना दृढ़ संकल्प है—शिव-संकल्प—यह भी तो देखो भोले!

आज हमें उसी शिव-संकल्प की फिर से आवश्यकता है। हमारा वैदिक पुरखा जब अपनी महान् संस्कृति को नया ही नया ढाल रहा था तब उसने शिव-संकल्प का महत्व समझा था। सबसे अच्छा धर्म है अपने मन को ऊंचा उठाओ, अपने मन को कल्याणकारी इच्छाओं से भरो। ओम् क्रतो स्मर कृते स्मर, आदि आदि। अर्थात् अपने संकल्प को याद करो, फिर कर्म को याद करो। कितना सोचा था कि कितना पाया यह याद करो। वाह-वाह,

कैसा अनूठा सत्य हमारे पुरखे दे गए। अब गुरू तुम्हारे पोप कठमुल्ले इसी शिव-संकल्प को यों समझाते हैं कि जजमान कितना दान देने का संकल्प बोला था, कित्ता दिया ? कितने ब्राह्मण जिमाने थे···कितने जिमाए, दक्षिणा कितनी सोची थी, यज्ञ कितने सोचे थे कितने किए ?—धत्तेरे की, यानी तुम्हारे भोले भक्तों से जो सोचवाया तो अपने ही मतलब का सोचवाया, यह तो तुम्हारा धर्म नहीं भोले। ये महा झूठा, महा निकम्मा धर्म है। वेदव्यास महाराज ने धर्म की जो व्याख्या की है, वही सच्ची है :

नमो धर्मायमहते धर्मो धारयति प्रजाः।
यत् स्यात् धारण संयुक्तम् सधर्म इत्युदा हृतः ।।

यानी उस महान धर्म को प्रणाम है जो सब मनुष्यों को धारण करता है। सबको धारण करने वाले जो नियम हैं, वे धर्म हैं। अब बोलो भोले, ये ऊंच-नीच, जात-पांत कहां गई ? ये बन्धन तो सब को एक में नहीं बांध पाते ? क्यों इसे मानना धर्म है। नहीं, हरगिज़ नहीं, कदापि नहीं। तब फिर भोले, शिव-संकल्प भी ऐसा ही होना चाहिए जो मानवमात्र के लिए कल्याणकारी हो यानी पेट भरने के लिए काम करना है और काम करने के लिए करना है शिव-संकल्प। शिव-संकल्प वही है जो मानवमात्र के लिए कल्याणकारी हो। यानी अपना पेट इस प्रकार भरो कि दूसरे के पेट पर तुम्हारी लात न पड़े। तुम कहोगे कि मेरे पंडों-पुजारियों की निंदा करके मैं स्वयं ही अपने पेट पर लातें मार रहा हूं। अच्छा गुरू, अगर इनको बख्शूं तो चोर, डाकू, काले बाज़ारिए आदि सभी गुण्डों को बख्शना पड़ेगा। क्या वह उचित होगी ? नहीं। यही स्वार्थी लोग ही तो झूठे धर्म-प्रचारक हैं। अपना पेट भरने के लिए ध्वंसात्मक कार्य करते हैं। वह सब कुछ अब अवश्य ही मायाजाल है, मिथ्या है परन्तु पेट तो फिर भी सत्य है। पेट है तो नाना प्रकार के रचनात्मक काम भी हैं। और इधर जब औरत-मर्द दुनिया में हैं तो उनका ब्याह भी होगा, बच्चे भी होंगे—पुत्र, कलत्र, मित्र, देह, गेह सभी कुछ होगा। इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है—तो क्या गुरू वाक्य झूठा है—पेट और बच्चे-बच्चों में ही फंसे रहे ? नहीं, जो गृहस्थ अपना और सबका भला साध कर

चलता है वह अपने हर काम में तुमको ही भजता है । तुम उसकी आत्मा हो, उसकी मति तुम्हारी गिरिजा है, उसके प्राण तुम्हारे सहचर हैं और उसका शरीर ही तुम्हारा घर है। वह जो कुछ भी कामकाज की बातें बोलता रहता है वे तुम्हारी ही स्तुति हैं । जितना चलता है तुम्हारी प्रदक्षिणा करता है, यानी दिन-रात जो कुछ भी करता है वह तुम्हारी आराधना है । हां भोले, झूठी माला फेरने से सबका मंगल चाहने वाली मेहनत-मशक्कत भरी आराधना ही सच्ची है। अब तुम कोरी आसमानी कल्पना मात्र नहीं हो योगेश्वर भूतभावन ! तुम साक्षात् इस भौतिक जगत में हो, मनुष्यमात्र, जीवमात्र शिव है ऊं नमो शिवाय। जय भोले । जय बम्भोले ।

कहो गुरू, होली कैसी रही ? जगदम्बा ने तुम्हारे श्रीमुख पर होली के हुड़दंग में जूते की लाल-काली पालिशें तो नहीं मली थीं—क्योंकि आजकल मियां-बीवी में होली खेलने का यही लेटेस्ट फैशन हो गया है। मियां-बीवी रंगों से नहीं, बल्कि जूते की पालिशों से होली खेलते हैं। और गुरू ये बतलाओ, तुम्हारे भगत भूतों ने तुम्हें तुम्हारी मर्ज़ी के खिलाफ रंग कर फिर मार-पीट तो नहीं की ? आजकल ये सब भी होने लगा है गुरू जी। अभी परसों ही एक नवयुवक सवेरे-सवेरे किसीसे मिलने जा रहा था। शायद अपनी चाकरी के संबंध में ही जा रहा होगा। होली के हुड़दंगिए उसके बगुले के परों-से सफेद कपड़े रंगने के लिए झपटे, बेचारे ने प्रार्थना की—कहा कि अभी न रंगो, एक तो कपड़े नये हैं दूसरे काम से जा रहे हैं। लौटने पर जी चाहे तो रंग डाल लेना। मगर हुड़दंगिए कहां मानते हैं। उनका समझ से क्या सरोकार ! बेचारे को रंग डाला। इसपर वह युवक नाराज़ हो गया, शायद गाली-वाली भी दी। बस फिर तो हुड़दंगियों ने उसे रिक्शे से उतार बुरी तरह पिचकारियों-पिचकारियों ही पीटा। इसपर भी उन्हें सन्तोष न हुआ तो तैश में आकर युवक के पेट में छुरा भी भोंक दिया; बेचारे के साथ खून की होली खेल डाली। और ये सब हुड़दंगिए गुरू, तुम्हारे भक्त हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश पूजते हैं,

हर एक को नास्तिक कहते फिरते हैं—और तिसपर भी ये हाल है उनका। इसीलिए तो हमको तुम्हारी चिन्ता हुई भोलानाथ। क्या मज़े की बात है भगवान कि तुम्हारे पास तो तीन-तीन आंखें हैं और तुम्हारे भक्तों के पास एक कानी आंख भी नहीं बची। ये शिवभक्त भारत देश इस समय उचित-अनुचित कुछ भी नहीं देख पा रहा। बस अपने-अपने गुमान में फूले चले जाते हैं हमारे लोग।

आज चारों ओर अहंकार का बड़ा ज़ोर है। जिसे देखो वही शान से ललकार रहा है कि हटो, बचो। हम चौड़े हैं और बजार सकड़ा है, इसलिए पहले हमको आगे निकलने दो। हर तरफ शोर है—पहले हम, पहले हम, पहले हम—अच्छा देवेश्वर, लखनवी तकल्लुफ की 'पहले आप, पहले आप' वाला मज़ाक तो आपने अवश्य सुना होगा। तो बोलिए कि क्या कहूं—पहले हम, कि 'पहले आप' ?—चुप्पी साध गए प्रभु ? जवाब न दिया ? अच्छा, हमारी ओर कनपटी से निहार कर अब ये मर्म मुस्कान का तीर साध रहे हो भोले ? जान गए कि मैं तुम्हारे साथ ठग विद्या कर रहा हूं।—हः—हः—गुरू, तुमसे पार नहीं पा सकता, तुम नीर-क्षीर विवेक करके सत्य को परख लेते हो। और हम ?—अब छिपा तो सकते नहीं तुमसे, इसलिए अपने अहंकार को कहलाने के लिए सच ही सच बोले देते हैं। पर सीधे-सीधे नहीं कहेंगे देव, तुम्हें एक कविता सुनाएंगे, उसके बहाने जो चाहो सो समझ लेना। श्री विश्वनाथ प्रसाद की एक पुरानी कविता है भोलानाथ, मेरी बड़ी पुरानी नोटबुक में लिखी थी। आज वही तुम्हें सुनाए देता हूं। सुनो महादेव :

रसना में महामधु घोल कहीं, तृण से लघु को भी सराहते हैं
रच नाटक भावुकता का कहीं, हम प्रीति की रीति निबाहते हैं
जिसमें कुछ भी न गंभीरता है, उसको गुण से अवगाहते हैं
जग को ठग के अब भोला ! सुनो, तुमको हम ठगना चाहते हैं।

यानी अकड़न्चू में जिसको चाहा, मनमाना तंग किया और जब उसने आपत्ति की तो नाराज़ होकर छुरा मार दिया। फिर जब पकड़े गए तो दनादन तुम्हारी खुशामद में लगे कि हे शिव जी, तुम्हें प्रसाद चढ़ाएंगे,

कानून के पंजे से हमें मुक्ति दिला दो। हे भगवान, हमें फांसी के फंदे से बचा लो। हे भगवान, इस समय मेरे प्राण संकट में हैं तुम्हारे घिनौने से घिनौने या तिनके समान तुच्छ किसी भगत-पुजारी के कहो तो सौ बार पैर छू लूंगा, जहां कहो नाक रगड़ आऊंगा—और जब छूट जाऊंगा तो फिर उसी तरह से अकड़न्चू दिखाऊंगा—अपनी अकड़ में मैं तुम्हारे ऊपर यह अहसान भी कर दूंगा कि तुम्हारा एक नया शिवाला बनवा दूंगा—न अपने पैसे के बल पर तो पब्लिक चंदे के बल पर ही सही—कहो गुरू, तुम्हें ठग लिया कि नहीं ? हः हः हः ! ये भी मेरे अहंकार का ही एक रूप था—यानी कवि के शब्दों में— 'रच नाटक भावुकता का कहीं हम प्रीति की रीति निबाहते हैं।'

ये अपने झूठे मंदिर तोड़ डालो भोला। हमारी इस ठग विद्या का अंत कर डालो। ये अहंकार तो ठीक नहीं।

लेकिन भोले, यहीं पर हमारी एक शंका भी निवारण कर दो। सारे धर्मशास्त्र चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि अहंकार बुरा है, बुरा है। पर अहंकार तो सब प्राणियों में है। और अहंकार भलाई-बुराई दोनों की जड़ है यानी एक तरफ तो इतना बड़ा है कि 'शिवोऽहं' 'शिवोऽहं' की रट लगाई जाती है और दूसरी ओर भी इतना बड़ा है कि हम—बस हमीं-हम की गुहार मचाई जाती है। इसमें सच क्या है ?

क्या कहा ? आत्मबोध का वह श्लोक पढ़ने को कहते हो जिसमें तुमने कहा है कि—ब्रह्मादि कीट पर्यन्ताः प्राणिनो मयि कल्पिताः। यानी कि मामूली कीट-पतंगों से लेकर ब्रह्मा तक सारे जीवधारी तुम्हारे परम अहं के अंदर कल्पित हैं लेकिन ये तुम्हारा अहम् नहीं है—जैसे समुद्र के ऊपर लहरें और बुदबुदे शान से फूलते इठलाते हैं पर उनसे समुद्र का गंभीर रूप प्रकट नहीं होता इसी तरह मनुष्य के क्षुद्र अहंभाव में उसके अहम् का गंभीर रूप भी परिलक्षित नहीं होता। उसे देखने के लिए तो समुद्र की गहराई में पैठना पड़ता है।

ठीक है प्रभु—तुम्हारी बात मानता हूं। आजकल करीब-करीब हर ज़िले में एकाध ऐसे अवतार अवश्य प्रकट हो गए हैं जो डंके की चोट पर शिवोऽहं, शिवोऽहं कहते हैं। सौ-पचास चेले-चांटियों की गुण्डा पार्टी

तैयार कर ली, भगवा रंग लिया। भंग छनने लगी, गांजे-सुल्फे के दम लगने लगे और भगतों को उपदेश यह दिया कि ये आजकल की नई विचारधारा के नास्तिक भंगी, चमारों-शूद्रों को सिर पर चढ़ा रहे हैं। इनको मारो, ये पापी हैं, अधर्मी हैं। अभी-अभी तुमको इष्टदेव के रूप में पूजने वाली एक ब्राह्मण जाति का एक जातीय अखबार पढ़ रहा था। उसमें एक ने लिखा है कि छुआछूत, ऊंच-नीच, जात-पांत को अब नहीं मानना चाहिए—दूसरे ने इसपर लिखा है कि छुआछूत, जात-पांत, ऊंच-नीच को मानना चाहिए क्योंकि यही धर्म है।

ये जितने जातीय अखबार हैं, सब अपनी-अपनी जातियों को पुराने तंग दायरों में बंद करना चाहते हैं। नये ज़माने का स्वर अब हर छोटी-बड़ी जाति में फूट पड़ा है, उसे दबाते तो नहीं बनता पर दबाने की कोशिशें खूब की जाती हैं। नमूने देखोगे गुरू! देखो!!

तुम्हारे विश्वनाथ मंदिर में हरिजनों को जब तुम्हारे कठमुल्लों के विरोध के बावजूद दर्शन करने का अधिकार मिल गया तब एक संन्यासी ने तुम्हारे सेठ भक्तों के चंदे से एक नया विश्वनाथ मंदिर बनाया और कहा कि वो विश्वनाथ तो अब गंदी जगह का पत्थर हो गए, इन नये विश्वनाथ को पूजो। ये तुम्हारे 'शिवोऽहं मार्का' भक्त हैं। देखी इनकी लीला। जब इनका गरब-गुमान तुमने खंडित कर दिया तो इन्होंने तुमको ही नष्ट करने का प्रयत्न किया। और जब शिवोऽहं जपते हैं तो विश्व-भर जितने 'हम-हम' बोलने वाले प्राणी हैं सभीमें शिव-शिव-शिव ही दिखलाई पड़ता है, विश्वनाथ। तुम यदि सचमुच ही विश्वेश्वर हो तो ब्राह्मण हरिजन दोनों ही कांटे तोल एक समान हैं—सभीको शिवोऽहं करने का अधिकार है। जब शिव सबमें हैं तो कैसी ऊंच-नीच, कैसी जात-पांत।

अब जात-पांत का मज़ा भी देखो प्रभु! शायद तुमने अखबारों में पढ़ा भी हो कि हाल के चुनाव में एक ब्राह्मण देवता एक हरिजन उम्मीद-वार को अपने किसी स्वार्थवश वोट देने को मजबूर हुए। वोट डालने गए तो गंगाजल साथ लेते गए। हरिजन को वोट डालकर उन्होंने अपने ऊपर गंगाजल छिड़का।

ये 'बांभन' का धरम देखा गुरू ! इस बंभने के ऊपर तुम गंगा जी से कहके मान-हानि मुकदमा चलवाओ भोले। इसने गंगा जी का बड़ा अपमान किया है।

हे देव, तुम्हारे उल्टे पैरों वाले भूतों से मुझे तनिक भी डर नहीं लगता, पर तुम्हारे इन उल्टी मति वाले भूत-पिशाचों से बड़ी घृणा होती है। इनको अबकी कुम्भ में भरके, ऊपर से कपड़ा बांधकर गंगा जी में तैरा दो प्रभु। ये संन्यासी पंडित पोंगापंथी महामिथ्या अहंकारी सब रावण के वंश वाले हैं। ये तमाम जातीय संगठन राक्षसों के सेक्रेटेरियट हैं। इन सबको अपने गांजे-सुल्फे की लपक में भस्म कर डालो प्रभु। ये पाप के घड़े हैं—इनमें घट-घट व्यापी राम नहीं समाता। ये शिवोऽहं कहने के अधिकारी नहीं। शिवोऽहं—जय बम्भोले।

• • •

प्रिंट्समैन, नई दिल्ली, में मुद्रित
1163